देशीय अध्ययन

भारत में राजनैतिक नारीवाद

कर्ताओं, विमर्शों और रणनीतियों का विश्लेषण

डॉ विभूति पटेल एवं राधिका खजूरिया

FRIEDRICH
EBERT
STIFTUNG

भारत में राजनैतिक नारीवाद
कर्ताओं, विमर्शों और रणनीतियों का विश्लेषण

डॉ विभूति पटेल एवं राधिका खजूरिया

कार्यकारी सारांश

- भारत में पिछले 50 सालों की नारीवादी गतिविधियों ने 5 हज़ार सालों से चली आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सफल चुनौती दी है। इस आंदोलन ने कई कानूनी सुधारों को जन्म देने के अलावा महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को विखंडित किया है और साथ ही परिवार, नातेदारी, धर्म, मीडिया और राज्य में पुरुष वर्चस्व पर सवाल उठाये हैं। नारीवादी आंदोलनों का सबसे विशिष्ट योगदान इस समझ का विकसित होना है कि हमारे पास एक नई दुनिया गढ़ने का विशेषाधिकार है, जिसके केंद्र में हाशिये पर खड़े वर्गों के लोग हैं।

- भारत में नारीवादी स्थान विशिष्ट है जिसे विविध समूहों ने बनाया है। इसमें शामिल हैं महिला समूह, राजनैतिक दलों के नेटवर्क, नारीवादी एवं एच.आई.वी./एड्स से जुड़ी गैर सरकारी संस्थाएं, गैर–वित्तपोषित नारीवादी एवं लैंगिक अल्पसंख्यकों वाली संस्थाएं एवं व्यक्ति, लोकतान्त्रिक अधिकारों के लिए काम करने वाली संस्थाएं, पर्यावरणीय–नारीवादी, गैर–नारीवादी, शोध संस्थाएं एवं विश्वविद्यालय। विस्तृत अनुभव के बावजूद नारीवादी स्थान विभाजित है।

- आजकल नारीवाद के विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया भी हो रही है क्योंकि स्त्री सक्रियता से मिलने वाली प्रमुख अंतर्दृष्टियां लैंगिक भूमिकाओं एवं परम्पराओं के तय अवधारणाओं को बदलने में सफल नहीं हो सकी हैं। इसके विपरीत, बाजारवाद एवं सांस्कृतिक परम्परावाद के साथ कुछ अवधारणाएं फिर से जीवित हुई हैं। सिद्धांत और व्यवहार में कोई तालमेल नहीं हैः 1970 के दशक में जहाँ स्त्री आंदोलनों एवं स्त्री अध्ययन में बेहतर संवाद था किन्तु अभी अध्ययन समूह और मानवाधिकार कार्यकर्त्ता एक दूसरे से कटे हुए हैं।

- नागरिकता का जेंडरीकरण यह अनिवार्य कर देता है कि हम इस तथ्य को चुनौती दें कि नागरिकता, जो कि कथित रूप से एक सार्वजनिक पहचान है, दरअसल निजी विषमलिंगी पितृसत्तात्मक परिवारों द्वारा उत्पन्न और प्रभावित की जाती हैं। शक्ति संबंधों में पूरी तरह डूबे होने की वजह से 'निजी' 'राजनैतिक" बन गया है। किसी भी अन्य संरचना की भाँति पितृसत्ता का भी एक बाहरी क्षेत्र होता है जिसकी वजह से विभिन्न प्रकार के विरोध संभव हो सके हैं जिसने इसे लगातार कमजोर किया है।

- हम जिस दुनिया का अनुभव करते हैं और जिन सीमाओं का सामना करते हैं, उनपर लगातार सवाल उठाना आज के दौर का नारीवाद है। हम जितना समझते हैं, उतना ही परिवर्तन की गाथा गढ़ने में सक्षम होते हैं। अपने अलग–अलग स्थापनाओं से नारीवादी क्षेत्र को रूपांतरित करती हुई अनगनित ऊर्जाएं उपलब्ध हैं जो न केवल पितृसत्ता बल्कि नियामक नारीवाद का भी प्रतिरोध कर रही है। क्षेत्रों की परस्पर क्रियाएं तंत्र को पूरी तरह से बदल सकती हैं।

मूल अंग्रेजी से अनुवाद

सचिन कुमार एवं प्रतिभा राई

सचिन पिछले बीस वर्षों से शिक्षा, श्रम–रोजगार–आजीविका, सकारात्मक युवा विकास, नागरिकता, एवं हिमालयी समाज–संस्कृति से जुड़े विविध कार्यों में संलग्न हैं। ये वर्तमान में राजकीय अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश में कार्यरत हैं।

प्रतिभा ने लगभग एक दशक तक उत्तराखंड के सामाजिक संगठनों के साथ जुड़ कर समकालीन मुद्दों पर नुक्कड़ नाटकों तथा लोक कलाओं के माध्यम से समुदाय को जागरूक करने का कार्य किया है। इन्होंने हाल ही में हिमाचल प्रदेश के चंगर क्षेत्र में पुरुषों के प्रवास के कारण पीछे रह गई स्त्रियों द्वारा अनुभव की जाने वाली समस्याओं पर एक लघु फिल्म का निर्माण भी किया है।

विषय–सूची

सहायक शब्दावली .... **i**

प्राक्कथन .... **iii**

आभार .... **v**

नारीवादी विचारों के ऐतिहासिक मूल और उनका विकास **1**

नारीवादी आंदोलन एवं महिला संगठनों की उत्पत्ति 1

नारीवाद की दूसरी लहर में महिला सशक्तीकरण 2

नारीवादी नेतृत्व एवं उसकी रणनीतियां 4

स्वायत्त महिला संगठनों का आविर्भाव 5

स्त्री–अध्ययन एवं महिला आन्दोलनों के बीच का संवाद 6

शोध एवं कार्य 6

नवीन स्वायत्त महिला समूहों की कार्यविधि 7

नवीन स्वायत्त महिला समूहों का प्रसार 8

नवीन महिला समूहों द्वारा उठाये गए मुद्दे **9**

महिलाओं के विरुद्ध की जाने वाली हिंसा को समाप्त करने के लिए चलाया जाने वाला अभियान 9

अन्यायपूर्ण पारिवारिक कानूनों के विरुद्ध संघर्ष 9

वैधानिक सुधार 10

महिलाओं के प्रजनन सम्बन्धी अधिकार 11

घटता शिशु लिंग दर 11

मादक द्रव (ताड़ी/शराब) के विरुद्ध आंदोलन 13

संसद एवं विधायिका में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण के लिए अभियान 13

महिला एवं भूमि सम्बन्धी अधिकार 14

आवासीय अधिकारों के लिए महिला आंदोलन 16

नारीवादियों का विकास एजेंडा **17**

जेंडर एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया 17

नारीवाद की तीसरी लहर 17

नव उदारवादी आर्थिक नीतियों की समीक्षा 18

पर्यावरणीय नीतियों एवं आजीविका सम्बन्धी सरोकारों के लिए किये गए कार्यों की समीक्षा 18

कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न 19

शिक्षित महिलाओं की सामाजिक भूमिका में सुधार किन्तु ग्लास सीलिंग (अदृश्य बाधाएं) बनी हुई है 19

प्रभावी समूह एवं संस्थाएं 20

आगामी चुनौतियाँ **21**

पारिस्थितिकीय आंदोलन, 'हमारे नारीवाद का संसाधन आधार' 23

नारीवाद एवं अक्षम महिलाएं 24

स्वास्थ्य आन्दोलनों को स्वरुप प्रदान करते नारीवादी 25

युद्ध क्षेत्रों एवं संघर्ष क्षेत्रों में नारीवादी 25

देह व्यापार में शामिल कामगारों के साथ नारीवादियों की एकजुटता 26
घरेलू कामगारों के साथ नारीवादियों की एकजुटता 26
लैंगिक हिंसा के शिकार महिलाओं एवं विपरीतलिंगियो के साथ एकजुटता 27
नारीवाद एवं प्रतिच्छेदनत्व 27
जन मान्यताओं का ध्रुवीकरण 28
नारीवादी समूह एवं सोशल मीडिया 28
नारीवादी समूहों की एल.जी.बी.टी. समूहों (स्त्री एवं पुरुष समलिंगी, उभयलिंगी एवं विपरीतलिंगी समूहों) के साथ गठबंधन 29
अन्तर्राष्ट्रीय विमर्शों एवं कर्ताओं के साथ भारतीय नारीवादी समूहों का जुड़ाव 33
महिला आंदोलन एवं विकास एजेंडा 34
भारत में महिला आंदोलन 36

नारीवादी आन्दोलनों की सफलता 37

सन्दर्भ–सूची (Bibliography) ---------- 39

सहायक शब्दावली

अनूदित शब्द/पद	मूल अंग्रेजी शब्द
अतिवादी	Radical
अतिवादीकरण	Radicalisation
अतिसंवेदनशीलता	Vulnerability
अभिजात वर्ग	Elite
अमानकीय	Non-normative
अलंकारिक शब्दावली	Trope
आधिपत्य	Hegemony
उत्तर संरचनावादी	Post-structuralist
उत्तरजीविता	Survival
उपागम	Approach
एकजुटता	Solidarity
कर्ता	Actor
क्षतिपूरक विधिशास्त्र	Compensatory jurisprudence
जेंडरीकरण	Gendering
ज्ञानवादी	Epistemological
ठिकाने	Sites
ढांचा	Framework
दृष्टि	Vision
नातेदारी	Kinship
नियामक नारीवाद	Normative feminism
निरस्तीकरण	Cancellation
निर्वहन अर्थव्यवस्था	Subsistence economy
निर्वाह–धन	Alimony
नैसर्गीकृत	Naturalised
न्यूनकारी	Rreductionist
पदानुक्रम	Hierarchy
परस्पर–क्रिया	Interplay
परस्परव्यापी	Overlapping
पर्यावरणीय–नारीवादी	Ecofemenist
पारदेशीय सक्रियतावाद	Trans-national activism
पार्श्वीकरण	Marginalization
पार्श्वीकरणवाद	Marginalization thesis
पार्श्वीकृत	Marginsliased
पितृवंश	Patrilineage
पितृस्थानिकता	Patriclocality
पेशेवर लड़ाकों वाली	Gladiatorial
प्रतिच्छेदनत्व	Intersectionality
प्रतितोष	Redressal
प्रतिरोध–प्रचार	Agitprop

प्रतिषेध	Prohibition
बहन भाव	Sisterhood
बहिष्करण	Exclusion
बहुलतावादी	Pluralistic
भद्दा	Grotesque
मुक्तिकामी अध्यात्मवाद	Liberation theology
रूढ़िजन्य विधि	Customary law
लैंगिक अपवित्रीकरण	Sexual violation
लैंगिक, यौनिक, यौनक्रिया सम्बन्धी	Sexual
वंचित वर्ग	Disadvantaged/ Deprived section
विखंडन	Deconstruction
वितर्क	Counter discourse
विनियोजन	Appropriation
विपरीतलिंगी	Transgender
विभाजक	Denominator
विमर्श	Debate/ discourse
विषम	Uneven
विषमलिंगी मानदंड/मानकों वाले	Heteronormative
वैधानिक प्रमाणीकरण	Legal certification
वैयक्तिक महिलाएं	Individual women
शब्दाडम्बर	Rhetoric
सत्ता–संरचनाओं	Power structures
संघर्ष के खतरे वाले क्षेत्रों	conflict prone regions
संघर्षरत क्षेत्र	Conflict areas
संदर्श योजना	Perspective plan
सक्रिय कार्यकर्त्ता	Activist
सक्रियतावाद	Activism
समलैंगिकों के प्रति अकारण भय/घृणा/नापसंदगी	Homophobic
समांगी	Homogenised
समानुभूति	Empathy
सहदायिकी का अधिकार	Coparceneray rights
सहस्राब्दी विकास लक्ष्य	Millennium development goals
सहायता प्राप्त प्रजनन	Assisted reproduction
साधक–विषयक उपागम	Instrumentalist approach
सामुदायिक और देशज भूमि	Communal and indigenous land
सामूहिकीकरण	Collectivization
सूक्ष्म–भेदयुक्त श्रेणियाँ	Nuanced categories
स्त्री एवं पुरुष समलिंगी, उभयलिंगी एवं विपरीतलिंगी समूह	LGBT
स्त्री–द्वेष	Misogyny
स्वतुल्यता	Reflexivity
स्वीय विधि	Personal law
हाशिये पर खड़े लोग	Marginalised
हितधारक	Stakeholder

प्राक्कथन

राजनैतिक नारीवाद की अवधारणा क्यों? पोलिस का, अर्थात सभी की बेहतरी के लिए प्रयासरत विभिन्न हित समूहों का, नागरिकों के मंडल का हिस्सा होना क्या वास्तव में नारीवाद की विशिष्ट प्रकृति नहीं है? क्या नारीवाद हमारी प्रजातांत्रिक व्यवस्थाओं को बनाने वाली राजनैतिक विमर्शों में शामिल कई समूहों एवं आंदोलनों में से एक का प्रतिनिधि नहीं है? एक नारीवादी विमर्श जो किसी राजनैतिक दलविशेष के संघर्षों पर केंद्रित न हो बल्कि जो निश्चित रूप से तर्कों एवं विचारों की बहुलता को अंगीकार करता हो जिससे एक सच्चे और अच्छे समाज का निर्माण हो सके।

फ्रेडरिक इबर्ट स्टिफटंग (एफ.ई.एस.) जो कि जर्मनी का सबसे पुराना राजनैतिक प्रतिष्ठान है, स्वतंत्रता, समानता, प्रजातंत्र एवं सामजिक न्याय के मूल्यों के लिए कार्य करने के लिए प्रतिबद्ध है। इस परिप्रेक्ष्य में हमने नारीवाद के इस विशिष्ट राजनैतिक प्रकृति के ह्रास एवं इसकी बारीकियों में बढ़ोत्तरी पर चिंता पूर्वक ध्यान दिया।

नारीवाद को जेंडर मुद्दों के मुख्यधारा में लाने या भाषा को जेंडर सम्वेदनशील बनाने तक सीमित रखने से उस वृहत्तर परिदृश्य की अवहेलना होती है जिसमें हाशिये पर खड़े लोगों की पहचान एवं मर्यादा को जगह मिल सकती है। जेंडर का यह गैर सरकारी संस्थानीकरण, जैसा की कुछ लोग कहते हैं, यह समझाने में असफल हैं कि संरचनात्मक असंतुलन अभी भी क्यों मौजूद है। और यह एक वैश्विक परिघटना है कि न केवल महिलाऐं बल्कि पुरुष और अन्य जेंडर अपने को उस व्यवस्था के हारे हुए पक्ष में समझते हैं जो अब या कभी भी उनका रहा ही नहीं।

इस पृष्ठभूमि के साथ एफ.ई.एस. ने 'राजनैतिक' के बारे में विचार विमर्श को पुनरुज्जीवित करने के लिए राजनैतिक नारीवाद पर एक परियोजना प्रारम्भ की—एक ऐसी परिचर्चा की शुरुआत की जिसमें बेहतर जीवन के वादे को निभाने वाले समावेशी समाज के निर्माण सम्बन्धी विचार एवं दृष्टि हो। न केवल भारत बल्कि एशिया में महिला आंदोलनों की बहुलता और इतिहास को देखते हुए उन नारीवादी विचारों एवं समूहों की विविधता स्वाभाविक प्रतीत होती है जो पहचान बनाने के लिए और समाज में समान भागीदारी सुनिश्चित कराने के लिए प्रयासरत हैं। परंपरागत महिला आंदोलनों के साथ नए समूहों का भी उदय हुआ जिसमें सभी नारीवादी नहीं हैं पर सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए रास्ता बनाने की वजह से उतने ही मानवतावादी हैं। एफ.ई.एस. पुल बनाना चाहता है स्थापित नारीवादी कार्यकर्ताओं एवं नई पीढ़ी के नारीवादियों के बीच, नारीवाद के कट्टर समर्थकों एवं उन गैर—परिवर्तितों के बीच जिसमें कुलीन नारीवादियों से लेकर जमीन पर काम करने कार्यकर्त्ता शामिल हैं। हम लैंगिक झुकावों, जेंडर पहचानों एवं अभिव्यक्तिओं की परवाह न करते हुए सबको एकीकृत करना चाहते हैं।

आदान—प्रदान एवं विश्लेषण के लिए एक साझा मंच प्रदान करते हुए एफ.ई.एस. सामाजिक न्याय पर संवाद को और व्यापक करना चाहता है जिसमें सभी हितधारक सम्मिलित हों चाहे वो नारीवादी और सामाजिक आन्दोलनों से हो, मजदूर संगठनों से हो सभ्य समाज या अकादमिक जगत से हों, प्रगतिशील चिंतक या फिर जनमत का निर्माण करने वाले प्रभावशाली लोग हों। एक दूसरे से सीखते हुए, आपसी मतभेदों को स्वीकारते हुए और समान लक्ष्यों के लिए प्रयास करते हुए एफ.ई.एस. उम्मीद करता है कि वह एशिया में सामाजिक न्याय की नई गाथा गढ़ने में अपना योगदान दे पायेगा।

प्रत्येक दृष्टि के लिए आरम्भ बिंदु की आवश्यकता होती है और इस शोधपत्र को प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है जो कि अब तक की कहानी का विस्तृत विवरण देता है। भारत में नारीवादी आन्दोलन के कर्ताओं, विमर्शों और रणनीतियों का समावेशी किन्तु संक्षिप्त विश्लेषण एक असाधारण कार्य था। इसको स्वीकार करते हुए हम प्रो. विभूति पटेल एवं राधिका खजूरिया को उनके उत्कृष्ट कार्य एवं प्रयासों के लिए धन्यवाद देते हैं। हम अपने सहभागियों के भी आभारी हैं जिन्होंने हमें अपनी विशेषज्ञता दी है। भारत पर केंद्रित इस देशीय अध्ययन के द्वारा हम एशिया में राजनैतिक नारीवाद नामक एफ.ई.एस. की क्षेत्रीय परियोजना में योगदान देना चाहते हैं। हमें उम्मीद है कि यह अध्ययन आगे बढ़ने के लिए मूल्यवान सूचनाये एवं विश्लेषण उपलब्ध करवाएगा।

पैट्रिक रयूथर, दमयन्ति श्रीधरन, माँडवी कुलश्रेष्ठ
फ्रेडरिक इबर्ट स्टिफटंग (एफ.ई.एस.), भारतीय कार्यालय
अप्रैल 2016

कृतज्ञता ज्ञापन

यह शोधपत्र आजादी के बाद से अब तक के लगभग 70 वर्षों में भारतीय नारीवादी आन्दोलनों द्वारा की गई यात्रा को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न है। यह यात्रा रही है समानता एवं लोकतंत्र प्राप्ति के प्रयासों की तथा एक पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में नारीवादी कर्मठता की अभिव्यक्ति के संघर्ष की। पूरे देश में मुख्य कर्ताओ, रणनीतियों, साझेदारियों और आन्दोलनों से जुड़े विचारणीय मुद्दों पर बनी सहभागिताओं तथा सफल/अनुकरणीय अनुभवों को रेखांकित किया गया है जिससे कि इस प्रजातान्त्रिक, स्वतंत्रता एवं समानता चाहने वाले और प्रेरणास्पद भारतीय नारीवादी आंदोलन के समृद्ध बहुआयामी प्रकृति पर बल दिया जा सके।

हमने यह शब्दबद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कैसे असाध्य चुनौतियों पर जीत दर्ज की गई, सफलताएं प्राप्त की गई, जिसने सीखने का आधार तैयार किया तथा विभिन्न समूहों के साथ एकजुटता स्थापित होने में मदद की। इसके फलस्वरूप इस चुनौतीपूर्ण एवं उथल पुथल भरे समय में सीमाओं के पार जाना और भविष्य की रणनीति का निर्धारण संभव हो सका। हम उम्मीद करते हैं कि यह शोधपत्र नए और पुराने नारीवादियों, जो कि विविध हितधारकों वाले संस्थाओं एवं समूहों के अंग हैं, के बीच गहन संवाद का आधार बनेगा। यह संवाद न केवल भारत बल्कि दक्षिण एशिया में पिछले चार दशकों से चलने वाले नारीवादी आंदोलनों, अभिकल्पित आदर्शों और लक्ष्यों को समृद्ध करेगा तथा उन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होगा। यह स्वतंत्रता, समानता, मर्यादा एवं न्याय प्राप्ति के सामूहिक प्रयत्न की यात्रा है जिसमें जाति, वर्ग, धर्म एवं प्रदेश की सीमाओं के परे साहसी भारतीय जनता की लोकतान्त्रिक एकजुटता का सौंदर्य रेखांकित है।

हम लेडी श्रीराम कॉलेज की डॉ कृष्णा मेनन, अम्बेडकर विश्वविद्यालय की डॉ रचना जौहरी, WISCOMP की संस्थापक निदेशिका डॉ मीनाक्षी गोपीनाथ के हृदय से आभारी हैं जिनके साक्षात्कारों एवं परिचर्चाओं ने भारत में नारीवादी आंदोलन की परिवर्तनशील प्रवृत्तियों पर बहुमूल्य अंतर्दृष्टियां दीं।

डॉ विभूति पटेल एवं राधिका खजूरिया

नारीवादी विचारों के ऐतिहासिक मूल और उनका विकास

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो हम पाते हैं कि परिवार, समुदाय एवं समाज में स्त्रियों की भूमिका कई कारकों के परस्पर क्रिया के परिणाम स्वरुप निर्धारित होती है जिसमे शामिल हैं जाति और जेंडर आधारित श्रम विभाजन, वर्गीय पृष्ठभूमि, समुदाय/जनजाति विशेष की भौगोलिक अवस्थिति एवं प्रजातीय उत्पत्ति। उदाहरण के लिए आर्य संस्कृति के वर्चस्व वाले समाजों में महिलाओं की लैंगिकता, उर्वरता एवं श्रम पर सख्त नियंत्रण रहा है। द्रविड़ संस्कृति में महिलाओं को अपेक्षाकृत कम कठोर पितृसत्ता का सामना करना पड़ा। पिछले पांच हजार वर्षों में महिलाओं की हैसियत को हिन्दू, जैन, बौद्ध, इस्लाम, सिख, ईसाई एवं पारसी जैसे धर्मों ने भी प्रभावित किया। बारहवी से सोलहवीं शताब्दी के बीच हुए धार्मिक सुधार आन्दोलन, जिसने भक्ति आंदोलन एवं सूफीवाद जैसे मुक्तिकामी अध्यात्मवाद को भी जन्म दिया, महिलाओं से जुड़े मुद्दों को सामने ले कर आये। मीराबाई, लाल डेड़, अक्का महादेवी एवं बहिना बाई जैसी संत कवयित्रियों ने महिलाओं की व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं रचनात्मक प्रेरणा की अभिलाषा को शब्द दिए (कृष्णास्वामी, 1993)।

भारत में नारीवादी आंदोलन एवं महिला संगठनों की उत्पत्ति

उन्नीसवीं सदी में पाश्चात्य उदारवादी लोकतान्त्रिक मूल्यों से प्रभावित पुरुष समाज सुधारकों ने, ब्रिटिश प्रशासकों के अनुमोदन के साथ, कन्या शिशु हत्या, सती प्रथा, जीवन से स्त्रियों के अलगाव, वेश्यावृत्ति एवं निराश्रित महिलाओं द्वारा भिक्षावृत्ति के विरुद्ध लड़ाई की प्रक्रिया आरम्भ की। विधवा पुनर्विवाह के लिए इन्होनें सार्वजनिक कार्यक्रम किये। इसके परिणामस्वरूप इनके रिश्तेदारों, पड़ोसियों, सामुदायिक नेताओं एवं संगठित धर्मों ने इनका बहिष्कार किया। यह एक तरह से अच्छा ही हुआ क्यूंकि क्षुद्र राजनीति से इनके अलगाव से इन्हे पर्याप्त समय एवं संसाधन मिले ताकि वे सत्ता–संरचनाओं से बातचीत कर सकें, कानूनी सुधार ला सकें एवं शैक्षणिक संस्थाओं, आश्रय गृहों एवं उन प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना कर सकें जिनसे शिक्षकों, नर्सों, और अन्य कुशल कर्मियों की पहली पीढ़ी ने निकलना था (देसाई, 1977)।

नारीवाद के पहले दौर के रूप में वर्गीकृत इस चरण में अंग्रेजी–शिक्षित महिलाओं ने बाल विवाह, सती प्रथा, कन्या शिशु हत्या के विरुद्ध संघर्ष किया एवं स्त्री शिक्षा एवं मताधिकार के लिए प्रयत्न किये। इसने केवल उच्च जाति एवं उच्च वर्ग की महिलाओं को ही प्रभावित किया। भारतीय समाज सुधारकों द्वारा मराठी, हिंदी, गुजराती, मलयाली, तमिल एवं बांग्ला में रचित विशद साहित्य उनके अभूतपूर्व प्रयासों का साक्ष्य है। अंग्रेजी–शिक्षित सशक्त महिलाओं की पहली पीढ़ी स्वतंत्रता पूर्व के महिला आंदोलन की पूर्वजायें हुई। उनमे से अधिकतर लोगों ने ऑल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस (ए.आई.डब्ल्यू.सी.), यंग विमेंस क्रिस्चियन एसोसिएशन (वाई.डब्ल्यू.सी.ए.) एवं अंजुमन–ए–इस्लाम जैसी अग्रगामी महिला संगठनों को बनाने में अपनी ऊर्जा झोंक दी। ए.आई.डब्ल्यू.सी. की राजनैतिक एजेंडे में शामिल थेः बाल विवाह के विरुद्ध लड़ाई, महिलाओं के मताधिकार के पक्ष में राय बनाना एवं मूलभूत कौशलों (जैसेः सिलाई, कढ़ाई, खाना पकाना, बाल बनाना, बच्चों की देखभाल, लोक एवं शास्त्रीय संगीत एवं नृत्य, पत्र लेखन इत्यादि), का प्रशिक्षण देना जिससे वे कुशल गृहिणी बन सकें। ए. आई.डब्ल्यू.सी. का सांस्कृतिक परिवेश ऊँची जातियों की हिन्दू स्त्रियों की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुकूल था। सभी व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए, गतिविधियों के क्षेत्र एवं लाभार्थियों की दृष्टि से वाई.डब्ल्यू.सी.ए. बहुधार्मिक थी मगर इसके निर्णय लेने वाली स्त्रियां राजनेताओं, नौकरशाहों एवं प्रबंधकों की ईसाई पत्नियां थीं जो ब्रिटिश शासकों के काफी करीब थीं। वाई.डब्ल्यू.सी.ए. ने नर्सों, टंककों, सचिवों एवं शिक्षकों को तैयार करने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाये तथा बेकरी उत्पादों, पुष्पसज्जा, पश्चिमी एवं भारतीय शास्त्रीय नृत्य एवं संगीत की कक्षाएं भी आयोजित की। अंजुमन ट्रस्ट महिला शिक्षा एवं कौशल विकास के लिए प्रतिबद्ध थी ताकि वे घर में रहकर कमा सकें. उन्हें परदे में रहकर काम करना पड़ता था। वाई. डब्ल्यू.सी.ए. की महिला पदधारियों को बाहरी दुनिया का सामना नाममात्र के पुरुष सुरक्षा के साथ करना पड़ा। ए.आई.डब्ल्यू.सी. की नेत्रियों के परिवार के पुरुष सदस्य उनके सहायक थे। अंजुमन ट्रस्ट की महिला नेत्रियां केवल मुस्लिम समुदाय से ही बात चीत करती थीं। खान–पान की आदतों में अंतर, परिधान के नियम एवं भाषा की बाधा की वजह से वो सहयोगपूर्ण उपक्रम नहीं चला पाती

थीं यद्यपि उनका नेतृत्व आर्थिक रूप से संपन्न तबके के पास था।

गांधी जी के नेतृत्व में अहिंसक तरीके से आयोजित विरोध की गतिविधियों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की व्यापक प्रतिभागिता को सुनिश्चित किया। कांग्रेसी परिवारों की महिला सदस्यों ने पर्दा उतार फेंका तथा सार्वजनिक कार्यक्रमों, रैलियों, प्रदर्शनों में भाग लिया और कैदी जीवन के भी अनुभव लिए। कई परिवारों ने महिलाओं को राजनैतिक खतरे उठाने की अनुमति भी दी जिससे वो कालांतर में मजबूत नेत्रियों के रूप में उभरी। कुछ उच्चशिक्षा प्राप्त महिलाएं शैक्षिक संस्थाओं, राजनयिक दस्तों, जनसेवा निगमों एवं निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में शामिल हुईं। बाकी महिलाएं प्रबुद्ध गृहिणियां बन गई जो अपनी बेटियों को शिक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध थीं। जो यात्रा उन्नीसवीं सदी के सामाजिक सुधारों से शुरू हो कर बीसवीं सदी के स्वाधीनता आंदोलन में अपने चरम पर पहुंची, वह वर्ग, जाति, पंथ, प्रजाति एवं धर्म का विचार किये बिना समानता, स्वतंत्रता एवं समान अवसर के संवैधानिक वादे को सुरक्षित करने में सफल हुई (कस्तूरी एवं मजूमदार, 1994)।

नारीवाद के दूसरे दौर में महिला सशक्तीकरण

महिला सशक्तीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे महिलाऐं जिंदगी की बागडोर अपने हाथों में लेतीं हैं, अपनी प्राथमिकताएं तय करतीं हैं कौशल प्राप्त करतीं हैं, आत्मविश्वास विकसित करतीं हैं, समस्याएं सुलझातीं हैं और आत्मनिर्भरता विकसित करतीं हैं। कोई किसी को सशक्त नहीं कर सकता, व्यक्ति स्वयं को सशक्त कर सकता है ताकि वह अपने जीवन में चुनाव कर सके और अपनी बात कह सके। राज्य की संस्थाएं एवं नागरिक समाज उन प्रक्रियाओं की सहयोगी हैं जो महिला आंदोलन के सामूहिक प्रयत्नों से महिलाओं के आत्म–सशक्तीकरण को पोषित कर सकें। इस परिपेक्ष्य के साथ, आइये बीसवीं सदी के आखिरी चौथाई में महिलाओं के अधिकारों के लिए हुए आंदोलन को समझें। 1970 के दशक में आरम्भ हुए नारीवाद के दूसरे दौर में मध्यवर्गीय महिलाओं ने उन सामाजिक आंदोलनों में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया और केंद्रीय भूमिकाएं निभाईं जो विद्यार्थियों, युवाओं, कामगारों, किसानो, आदिवासियों, दलितों एवम नागरिक स्वाधीनताओं से जुडी थीं। वे हितैषी पुरुषों के पैतृकवाद एवम उच्चवर्गीय महिलाओं के 'धर्मार्थ' एवम 'परोपकारी' सामाजिक कार्यों से नफरत करतीं थी और स्वयं को उन्होंने महिला अधिकारों के योद्धा के रूप में घोषित किया।

1975 के बाद की अवधि में महिला अधिकार आंदोलन महिलाओं के कई सरोकारों को सामने लेकर आया। महिला आंदोलन में उस समय तक विभिन्न विचारधाराओं के विविध रंग सहअस्तित्व में थे। नवगठित स्वायत्त महिला समूह पूर्ववर्ती महिला संगठनों को विशिष्टवर्गीय पूर्वाग्रह से ग्रस्त मानते थे। उनके लिए वे 'अच्छे परिवारों की' साधन संपन्न महिलाऐं थी जो साधारण, गरीब और दुःखी महिलाओं के लिए कुछ परोपकारी सामाजिक कार्य किया करतीं थीं जिससे असमानता पर आधारित सम्बन्ध बदलने की बजाय और मजबूत होते थे और सामाजिक व्यवस्था यथावत बनी रही। नारीवादी यह निश्चयपूर्वक कहते थे कि परंपरागत महिला अपने व्यक्तिगत जीवन में जाति व्यवस्था के नियमों को मानती थी और सामान्यतः यथास्थिति को बनाये रखने के लिए अभिमुख थीं।

पिछले चार दशकों में वंचित वर्गों की महिलायें–दलित एवं आदिवासी, औद्योगिक कामगार एवं कृषि श्रमिक, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रो की गरीब महिलाऐं–समुदाय और परिवार में महिलाओं के विरुद्ध हो रही हिंसा, महिला मुखिया वाले घरों में चुड़ैल होने का आरोप लगा कर हत्या (विच हंटिंग), आदिवासी एवं दलित महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कारों, दहेज सम्बन्धी हत्याओं, घरेलू हिंसा एवं शराबखोरी और सम्मांन के नाम पर किये जाने वाले अपराधों के खिलाफ संगठित हुईं हैं। नए स्वयात्त महिला समूह लैंगिक शोषण के सभी प्रकारों के विरुद्ध संघर्ष में विश्वास करते हैं तथा महिलाओं को एक उत्पीड़ित लिंग समझते हैं। वो मानती हैं कि जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता की तरह लिंगवाद का इस्तेमाल शासक वर्ग ने जन साधारण को बांटने के लिए किया है। अतः वे जाति व्यवस्था, धार्मिक अतिवाद एवं लिंगवाद से एक साथ लड़ने में विश्वास करती हैं (रेगे, 2006)। व्यक्तिगत जीवन में भी वे विभिन्न धर्मों, जातियों एवं वर्गों के लोगों के प्रति गैर–पक्षपातपूर्ण नजरिये का पालन करती हैं. भारतीय नारीवादी यह विश्वास करती हैं आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री–मुक्ति के लिए न्यूनतम आवश्यक दशा है पर यह पर्याप्त नहीं है। पूर्ण मुक्ति के लिए सामाजिक–सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष करना

पड़ेगा। इन महिला–समूहों के कई सदस्य स्वयं को नारीवादी कहते हैं (भसीन, 2002)। ये खुद को सामाजिक कार्यकर्ता कहा जाना पसंद नहीं करते (मेनन, 2011)। जो लोग ये मानते हैं कि कानूनी प्रावधान महिलाओं की स्थिति को बदल सकते हैं उन्हें उदारवादी नारीवादी कहते हैं। जो लोग ये मानते हैं कि महिलाओं की दुर्दशा के लिए पुरुष जिम्मेवार हैं उन्हें अतिवादी नारीवादी कहते हैं. और जो महिलाओं के शोषण को पूरे सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं में स्थापित करते हैं उन्हें समाजवादी नारीवादी कहते हैं। विभिन्न प्रकार के जन संस्थानों जैसे मजदूर संघों, प्रजातान्त्रिक अधिकार संस्थानों एवं मुद्दा–आधारित संयुक्त मोर्चों के साथ सहयोगपूर्वक काम करते हुए समाजवादी नारीवादी महिला आंदोलन एवं वृहत सामाजिक–राजनैतिक आंदोलन के बीच संपर्क स्थापित करने में विश्वास करते हैं। वो मानते हैं कि महिलाओं की मांगों के लिए रोज लड़ना जरूरी है। केवल तभी पुरुषों और महिलाओं के बीच नवीन चरित्र, नवीन विचारधाराएं, नवीन नैतिकताएं, नवीन सामंतवादी सम्बन्धों को विकसित किया जा सकता है। पिछले दो दशकों में दलित नारीवादी जैसे उर्मिला पंवार, कुमुद पावड़े और बेबी कांबले (महाराष्ट्र); सिंथिया स्टेफेन और रूथ मनोरमा (कर्नाटक); बामा और मीना कंडास्वामी (तमिलनाडु) राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यंत प्रभावी हो गयी है (रेगे, 2006)। दलित नारिवादिओं का विश्लेषण है कि दलित महिलाओं पर उत्पीड़न का तिगुना संकट है, गरीबी के अलावा दोहरी पितृसत्ताएँ, दलित पुरुषों की पृथक पितृसत्ता और ऊँची जाति के महिलाओं और पुरुषों की पितृसत्ता। यह एक ऐसे समकालीन नारीवादी राजनीति की कल्पना के पक्ष में दलीलें देती है जिसमें विवध दृष्टिकोणों वाले विचारधाराएँ सम्मिलित हो (मेनन, 2012)। कई दलित विद्वान, जो नारीवाद को उनकी आवश्यकताओं–आकांक्षाओं को प्रकट करने में अपर्याप्त पाते हैं, उनमें दलित स्त्रीवाद एक रुझान के रूप में उभर कर आया है (स्टीफन 2009)।

नारीवाद के दूसरे दौर में महिला संगठनों के मुख्य सरोकार निम्नवत थे :

- अधिकतर अन्य देशों के विपरीत भारत में पुरुषों की संख्या महिलाओं से अधिक है।
- लड़कियाँ और महिलाएं अपने ही परिवार में पोषण सम्बन्धी भेदभाव का सामना करती है वो सबसे अंत में और सबसे कम खाती हैं।
- औसत भारतीय महिलाओं का अपनी उर्वरता एवं प्रजनन सम्बन्धी स्वास्थ्य पर सीमित नियंत्रण होता है।
- भारत में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता दर कम है तथा लड़कों की अपेक्षा कम लड़कियाँ स्कूल जा पाती हैं। यदि लड़कियों का नामांकन हो भी जाता है तो उनमें से कई स्कूल बीच में ही छोड़ देती हैं।
- महिलाओं के कार्यों को कम आँका जाता है तथा उनके कार्यों को कम पहचान मिलती है। वे पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा देर तक काम करतीं हैं। घर के तथा समुदाय के अधिकतर कार्य महिलाऐं करतीं हैं जिसके लिए न उन्हें कोई पैसा मिलता है न उनका यह काम दिखाई देता है।
- जैसे ही ''महिलाओं के काम" व्यवसाय में बदलते है उन पर व्यहवाहरिक रूप से पुरुषों का लगभग एकाधिकार सा हो जाता है उदाहरण के लिए पेशेवर शेफ ज्यादातर पुरुष हैं। श्रम का लैंगिक विभाजन यह सुनिश्चित करता है कि महिलाऐं हमेशा वैतनिक कार्य की तुलना में अवैतनिक घरेलू कार्यों को प्राथमिकता दें, श्रम के लैंगिक विभाजन के पीछे कोई ''प्राकृतिक'' जैविक अंतर नहीं है बल्कि कुछ विचारधारा सम्बन्धी मान्यताएं हैं।
- समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 के बावजूद समान काम करने के बाद भी महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी मिलती है। किसी भी राज्य में कृषि के क्षेत्र में महिलाओं और पुरुषों को समान मजदूरो नहीं मिलती है अधिकतर महिला कामगार असंगठित क्षेत्र में कार्य करती है और उन्हें मुश्किल से गुजारे लायक मजदूरी ही मिल पाती है।
- संसद, कैबिनेट,उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय जैसी शासकीय एवं निर्णय लेने वाले स्थानों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है।
- भूमि और संपत्ति के अधिकारों में महिलाओं के साथ कानूनी पक्षपात होता है। अधिकतर महिलाओं की स्वयं की संपत्ति उनके नाम नहीं होती तथा पैतृक संपत्ति में भी उन्हें अपना हिस्सा नहीं मिल पाता है।
- महिलाऐं घर में और घर के बाहर हिंसा का सामना करतीं हैं। जातिवाद, सम्प्रदायवाद, प्रजातीय अतिवाद ने दलितों, धार्मिक अल्पसंख्यकों,एवं आदिवासी महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को संस्थागत कर दिया है।

- वे महिलाएं जो विषमलिंगी एवं सजातीय विवाह में विश्वास नहीं रखतीं हैं उन्हें परिवार, समुदाय और आपराधिक कानून व्यवस्था द्वारा दण्डित किया जाता है।

नारीवादी नेतृत्व एवं उसकी रणनीतियां

छठे दशक के बाद के वर्षों में भारतीय राजनीति का अतिवादीकरण हुआ जिससे नयी महिला मुक्ति आंदोलन की उत्पति हुई। युवाओं, गरीब देहातियों, सीमांत किसानों, शिक्षित दलितों, आदिवासी पुरुष तथा महिलाओं तथा औद्योगिक कामगारों का विद्रोही तेवर, असंख्य विशिष्ट अभिरुचि समूहों की स्थापना के रूप में अभिव्यक्त हुआ जिसने स्थानीय जनता की आवश्यकताओं एवं मांगों पर ध्यान दिया। विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं से प्रेरित समाज के सबसे निम्न तबके की जनता के विरोध आंदोलनों ने एक आक्रामक रास्ता चुन लिया था जिसके साथ ही वृहत राजनैतिक प्रक्रियाओं के शब्दाडम्बर में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। अधिकृत कम्युनिस्ट पार्टियां केरल, प० बंगाल, आंध्र प्रदेश, बिहार एवं पंजाब में नक्सलबाड़ी आंदोलन के रूप में एक बड़ी राजनैतिक चुनौती का सामना कर रहे थे। 1974 में गुजरात के मध्यवर्ग द्वारा भ्रष्टाचार, मूल्यवृद्धि, बेरोजगारी, सट्टेबाजी, जमाखोरी, कालाबाजारी के विरूद्ध एक जन आंदोलन किया गया जिसे नवनिर्माण आंदोलन के नाम से जाना जाता है। इसे बिहार में गांधीवादी नेता जयप्रकश नारायण के नेतृत्व में सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन के रूप में दोहराया गया।

उस वर्ष रेलवे कर्मचारियों द्वारा की गयी एक अभूतपूर्व हड़ताल ने कामगार वर्ग के सामूहिक सामर्थ्य की राजनैतिक शक्ति का प्रमाण दिया। छत्तीसगढ़, सिंहभूम, भोजपुर, श्रीकाकुलम, चंद्रपुर, धुलिया और उत्तर–पूर्वी राज्यों के कुछ हिस्सों में विनाशात्मक विकास के विरुद्ध आदिवासियों का आंदोलन आरम्भ हो गया। जरुरत से ज्यादा संसाधनों के निकासी के बर्बर साधनों पर आधारित इस व्यवस्था में कुलक (जमींदार), साहूकार, ठेकेदार, शराब के तस्कर और स्थानीय उद्योगपति लाभान्वित हो रहे थे। 1974 के जिस सूखे ने सामान्य कृषि कार्यों को पंगु बना दिया उसके जवाब में महाराष्ट्र के धुले क्षेत्र के आदिवासियों ने एक रोजगार गारंटी योजना की मांग की। इस ऐतिहासिक माँग ने आर्थिक संकट के दौरान राज्य की जिम्मेवारी के बारे में विकास कार्यकर्ताओं की सोंच में क्रांतिकारी बदलाव किये (पटेल, 1985)। हिमालयी घाटियों में पेड़ों के मनमाने कटान के विरुद्ध गांधीवादी सामुदायिक कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में आंदोलन आरम्भ हुआ। चारे, पानी और मौसमी फलों की बहुत कमी हो रही थी। साथ ही गांव–गांव में विनाशकारी भूस्खलन हो रहे थे। महिलाओं ने ठेकेदार के सेवकों की कुल्हाड़ियों से पेड़ों को बचाने के लिए एक रचनात्मक विधि विकसित कर ली। यह आंदोलन "चिपको" के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि पेड़ काटनेवालों के आने पर कुल्हाड़ी के क्रूर प्रहार से पेड़ों को बचाने के लिए महिलाऐं पेड़ों से चिपक जाती थीं।

महाराष्ट्र में प्रगतिशील आंदोलनों से जुड़ी महिला कार्यकर्ताओं एवं महिला बुद्धिजीवियों ने मूल्यवृद्धि के खिलाफ महिलाओं की समिति नाम से एक संयुक्त मोर्चे की पहल की और उन दोषियों के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्यवाही की जिनकी जमाखोरी की वजह से आवश्यक वस्तुओं की कमी पैदा हो रही थी। वामपंथी एवं समाजवादी पृष्ठभूमि वाली अनुभवी एवं योग्य महिलाओं के नेतृत्व में हजारों की संख्या में गरीब और निम्न मध्यवर्ग की महिलाऐं इस संघर्ष में कूद पड़ी। मृणाल गोरे, अहिल्या रंगानेकर, मंजू गाँधी और तारा रेड्डी ने विभिन्न वर्गों और पृष्ठभूमि की महिलाओं तक पहुँचने की अपनी अनोखी योग्यता की वजह से जनता की नजरों में अपनी विशेष जगह बनाई। उनकी बौद्धिक आत्मनिर्भरता, मुद्दों को वृहत्त राजनैतिक यथार्थ से जोड़ने की क्षमता, सरल जीवनशैली और किसी पर हावी न होने की प्रकृति ने सभी राजनैतिक विचारधाराओं वाली महिला मुक्ति कार्यकर्ताओं को युवा पीढ़ी के लिए एक आदर्श बना दिया। लगभग उसी समय पुणे में महिला मुक्ति आंदोलन समन्वयन समिति का सम्मलेन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन का सामाजिक–राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आधार अत्यंत व्यापक था क्योंकि इसकी कार्यवाही में युवा शिक्षित महिलाओं,पेशेवरों, लेखकों, शिक्षकों से लेकर औद्योगिक कामगार महिलाओं, असंगठित क्षेत्र की महिला कर्मियों, देवदासियों और आदिवासी महिलाओं ने भाग लिया तथा अपनी माँगें रखी।

1974 में बम्बई (अब मुंबई) में स्त्रीमुक्ति संगठन तथा हैदराबाद में प्रगतिशील महिला संगठन का गठन हुआ। दिल्ली में उग्र छात्र आंदोलन एवं लोकतान्त्रिक अधिकार आंदोलन से महिलाओं के नये नेतृत्व का उदय हुआ। ये स्वतंत्र, स्वनिश्चयी लोकतान्त्रिक आंदोलन थे जिन्होंने

प्रत्येक प्रकार के पदानुक्रम आधारित व्यवस्था पर सवाल उठाए। पूरे भारत में विभिन्न राजनैतिक समूहों में महिलाऐं व्यक्तिगत तौर और अपने संगठनों के पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रहों से असंतुष्ट थीं किन्तु इसके विरुद्ध खुले तौर पर वे आपातकाल की समाप्ति के बाद आई। भारत में उस समय के युवा, राष्ट्रीय आंदोलन के सपनों में शामिल नहीं थे। आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक संकटों तथा भ्रष्टाचार, सूखा, मुद्रास्फीति, बेरोजगारी एवं गाँव के गरीबों के बदतर हालात जैसे विविध समस्याओं से जूझते हुए युवाओं ने विरोध का सहारा लिया जिनका व्यवस्था से मोह भंग हो चुका था। यह व्यापक एवं खुली असंतुष्टि कार्यरूप में भी अभिव्यक्त हुई तथा इन कार्यों के दृढीकरण से पूरे देश में शक्तिशाली संगठनों का विकास हुआ। इन आंदोलनों ने विभिन्न मुददों को उठाया जिसमें शामिल थे भूमि अधिकार, मजदूरी, रोजगार, कार्यस्थल पर सुरक्षा, दलितों तथा कामगारों का उत्पीड़न एवं शोषण। इन संघर्षों में कई महिलाऐं उत्साह, उत्तरदायित्व एवं रचनात्मकता के साथ शामिल हुई (पटेल 2002)।

1975 में जब संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष की घोषणा की गयी उसी वर्ष भारत में आपातकालीन शासन की घोषणा हुई। 1977 में जब तक इसे हटाया गया लोकतान्त्रिक अधिकारों के मुद्दों पर कई महिला समूह उभर चुके थे। लगभग दो वर्षों के थोपी गयी खामोशी के बाद प्रेस ''सक्रिय'' हो गए । आपातकाल के दौरान महिलाओं पर किये गए अत्याचारों पर खुल कर लिखा जाने लगा। अत्याचाओं की यह कहानियाँ अधिकतर महिलाओं के जीवन से मिलती–जुलती थीं चाहे वह परिवार में हो या सड़क पर या कार्यस्थल पर या राजनैतिक समूहों में। यह प्रक्रिया 1980 में अपने चरम पर पहुँची जब कई महिला समूह विरोध में सड़क पर उतर आये।

1980 के दशक के दौरान महिला उत्पीड़न का मुद्दा न केवल परिचर्चाओं सेमिनारों और ''गंभीर'' आरोपों बल्कि लोकप्रिय मीडिया में भी छाया रहा है। जिन महिलाओं ने अपनी समस्याओं एवं तिरस्कार के स्रोतों को खुद पहचाना था उन्हें एक भाषा मिली, एक संगठनात्मक मंच मिला, एक सामूहिक पहचान और वैधता मिली जो अब तक उनके पास नहीं थी।

भारत सरकार द्वारा भारत में महिलाओं की दशा पर जो समिति नियुक्त की गयी थी उसने 1974 में एक वृहत रिपोर्ट जारी की जिसका शीर्षक था ''समानता की ओर''। यह रिपोर्ट विद्वानों ने अन्तरानुशासनिक दृष्टिकोण के साथ तैयार किया था जिसे संसद मे प्रस्तुत किया गया और इसे राज्यतंत्र, निर्णय लेने वाली संस्थाओं, और प्रिन्ट मीडिया का भारी समर्थन प्राप्त हुआ। इस रिपोर्ट के मुख्य बिंदु थे–भारतीय महिलाओं के चौकाने वाले विवरण जो लिंग अनुपात, महिला मृत्यु दर, तथा रुग्णता दर का अत्यंत उच्च स्तर, अर्थव्यवस्था में महिलाओं का हाशिये पर आना और भेदभावपूर्ण 'स्वीय विधि' (परसनल लॉ) के रूप में व्यक्त हुए। हालांकि रिपोर्ट सभ्य समाज में और कानून व्यवस्था के रखवालों के द्वारा महिलाओं के विरुद्ध की जाने वाली हिंसा पर प्रकाश डालने में असफल रही। इस रिपोर्ट की मुख्य उपलब्धि थी भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध परिषद (आई.सी.एस.एस.आर.) जैसे प्रमुख शोध संस्थान द्वारा महिलाओं से जुड़े मुददे के लिए प्रतिबद्ध विद्वानों को वित्तीय सहायता मुहैया कराने के लिए नीति का निर्धारण करना ताकि विभिन्न निर्धनता समूहों की महिलाओं पर शोध कर सकें।

भारत में स्वायत्त महिला संगठनों का आविर्भाव

1977 से 1979 के बीच दिल्ली, बैंगलोर, हैदराबाद, बम्बई, अहमदाबाद पटना और मद्रास जैसे शहरों में नयी महिला समूहों का उदय हुआ। उन्होंने कई मुद्दों पर विरोध प्रदर्शन किये जिसमे शामिल थे दहेज सम्बन्धी हत्याएँ, सौन्दर्य प्रतियोगिता, मीडिया में महिलाओं का लिंगवादी चित्रण, विदेशों से कामोत्तेजक फिल्मों और साहित्य का आयात, यूनाइटेड किंगडम के आप्रवासी अधिकारियों द्वारा कौमार्य परीक्षण, हिरासत में बलात्कार तथा महिला कैदियों की दयनीय अवस्था। अपने संगठन और दृष्टिकोण में ये समूह बहुसांस्कृतिक थे। परिणामस्वरूप उनके राजनैतिक एजेंडे में वर्ग, जाति, धर्म, नस्ल और भूमंडलीकरण की परस्पर क्रिया से निर्मित, महिलाओं की जटिल वास्तविकता का तत्कालीन संचालन प्रतिबिंबित हुआ। इन समूहों के प्रवक्ताओं को सुदृढ़ विचारधारा एवं छठे दशक के उत्तरार्ध के उग्र आंदोलन के अनुभवों का लाभ मिला। उनका सामूहिक विवेक इस आंदोलन की रीढ़ था। क्षेत्रीय भाषा तथा अंग्रेजी में छपने वाली उनकी पत्र–पत्रिकाओं तथा पुस्तिकाओं में भारतीय महिलाओं की समस्याओं से निपटने के रचनात्मक तरीके प्रदान किये। जनवरी 1979 में ''मानुषी पत्रिका'' की शुरुआत इसी दिशा में एक गुणात्मक छलांग थी। अस्सी के दशक के शुरुआती वर्षों में भारत के महिला अध्ययन

के विद्वानों ने अकादमिक संस्थान में महिलाओं के मुद्दों का अध्ययन तथा उन पर अनुभव आधारित सामग्री तथा सकारात्मक गतिविधि पर आधारित शोध के बारे में विचार विमर्श आरंभ कर दिया था। कार्यकर्ताओं, अकादमिक जगत के लोगों, शोधकर्ताओं, नीतिनिर्माताओं और संयुक्त राष्ट्र तंत्र के लिए इस विषय पर विमर्श उपयोगी सिद्ध हुआ। उच्च शिक्षा की शीर्ष संस्था विश्व विद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) ने महिला अध्ययन को एक ऐसे विषय के रूप में परिभाषित किया जिसमें शोध, दस्तावेजीकरण, शिक्षण–प्रशिक्षण एवं कार्यकलाप शामिल है। ऐसा समझा जाता है कि हमारे समाज में महिलाओं की दशा गौण है इसीलिए महिला अध्ययन द्वारा विकसित ज्ञान का उपयोग महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए किया जाना चाहिए (पटेल 2002)।

स्त्री अध्ययन और महिला आंदोलन के बीच संवाद

विश्वविद्यालय तंत्र के अंदर या बाहर क्रियाशील स्त्री अध्ययन केंद्रों ने 1980 के दशक के शुरुआती वर्षों में महिला आंदोलनों के अनुभव जन्य प्रमाणों को स्वीकार करना आरम्भ कर दिया। यह ऐसा समय था जिसमे सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों, में सामाजिक कार्यसंस्थाओं और विशिष्ट क्षेत्रों में काम करने वाली गैर सरकारी संस्थाओं में प्रतिभागी शोध, क्रियात्मक शोध तथा सब से नीचे के तबके का अध्ययन (सब अल्टर्न स्टडीज) ने अपना स्थान बनाना शुरू कर दिया था। इस प्रक्रिया ने परोक्ष रूप से महिला अध्ययन तथा महिला आन्दोलन के पारस्परिक क्रिया को सुगम बना दिया था। दिसंबर 1980 में, भारत में महिला मुक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य पर आयोजित राष्ट्रीय सम्मलेन में महिलाओं से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर अत्यधिक तकनीकी विवरणों के साथ विस्तृत चर्चा हुई। इसमें गीतों, गाथा गीतों (बैलेड), लघु नाटिकाओं, चुटकुलों, शब्दावलियों, विवध जीवन शैलियों तथा बहुभाषी संवादों को शामिल किया गया। यह सम्मलेन विविध राजनैतिक आधारों वाली महिलाओं को एक लोकतान्त्रिक विमर्श के लिए एक मंच पर लाने में सफल रहा। इस प्रकार वैकल्पिक सांस्कृतिक सामग्री/विधि (इनपुट) के दृष्टिकोण से इस सम्मलेन ने नए चलन की शुरुआत की। चार महीने बाद, अप्रैल 1981 में मुंबई के एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय में महिला अध्ययन पर हुए प्रथम राष्ट्रीय सम्मलेन में कार्यकर्ताओं, शोधकर्ताओं, शिक्षकों, प्रशासकों एवं नीति निर्माताओं ने विभिन्न प्रकार के मुददों पर चर्चा की। इनमे शामिल थे महिलाओं को दरकिनार करने वाली विकासात्मक प्रक्रिया, पाठ्य पुस्तकों में जेंडर सम्बन्धी पूर्वाग्रह, मीडिया में लैंगिकवाद, विज्ञान व तकनीकी का जेंडर के प्रति संवेदनशील न होना, महिलाओं की स्वास्थ्य सम्बन्धी जरूरतें और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा–बलात्कार, घरेलू हिंसा एवं वेश्यावृति। प्रतिभागियों (पुरुष और स्त्रियाँ दोनों) में यह आम राय थी कि महिला अध्ययन निष्पक्ष न होकर महिलाओं के प्रति पक्षपाती था। माना गया था कि महिला अध्ययन महिला के सशक्तिकरण के लिए ज्ञान के आधार का निर्माण करेगीं। यह नीति के स्तर पर तथा पाठ्यक्रम विकास में परिवर्तन के लिए दबाव बनाकर, मुख्यधारा के शैक्षणिक समुदाय में उपस्थित जेंडर के प्रति संवेदनहीनता और पूर्वाग्रह की आलोचना करके, वैकल्पिक विश्लेषणात्मक उपकरणों एवं दृष्टिओं की रचना करके, विकासात्मक जरूरतों के लिए वकालत करके अर्थव्यवस्था तथा समाज में महिलाओं की विकासात्मक जरूरतों के लिए वकालत करेंगीं। इस सम्मलेन से एक नए चलन की शुरुवात हुई जिसके द्वारा धीरे–धीरे महिला कार्यकर्ताओं को अकादमिक सेमिनारों, विचार सभाओं और प्रशिक्षण कार्यशालाओं में प्रतिभागी एवं संसाधन व्यक्ति के रूप में निमंत्रित किया जाने लगा।

शोध एवं कार्यान्वयन

महिलाओं के लिए संयुक्त राष्ट्र दशक (1976–1989) के दौरान बहुत समय तक महिलाओं पर शोध और महिलाओं पर क्रियाकलाप साथ साथ चल रहे थे। अस्सी के दशक के बाद महिलाओं पर शोध के लिए उपलब्ध धन में वृद्धि के साथ साथ शोधकर्ताओं और कार्यकताओं के बीच की खाई और चौड़ी होती चली गयी। कई महिला कार्यकर्ताओं ने स्थापित शोध संस्थाओं के लिए ठेके पर या स्वतंत्र रूप से गुजारे से कम कीमत पर काम किया क्योंकि उपलब्ध धन का इस्तेमाल मुख्यतः संस्थाओं के निर्माण और निर्णयकर्ताओं के लिए अतिरिक्त सुविधाएँ जुटाने हेतु किया जाता था। शुरुआत में सरकार ने श्रम और रोजगार, ग्रामीण विकास और समाज कल्याण जैसे मंत्रालयों के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र तंत्र ने शिक्षा जगत से जुड़े लोगों के लिए शोध प्रायोजित किये जिसकी वजह से पदानुक्रम की स्थिति पैदा हो गयी होगी। साथ ही जन साधारण के स्तर पर होने वाले काम में वृद्धि और स्वायत्त महिला समूहों द्वारा अभियानों के आयोजन और राजनैतिक कार्यवाही के लिए जनमत तैयार करने के साथ यह जरूरी हो गया

कि समस्याओं का अध्ययन सहभागी परिप्रेक्ष्य के साथ किया जाये। धन उपलब्ध करवाने वाली विदेशी संस्थाएं ऐसे क्रियाकलापों या कार्यकर्ताओं का समर्थन करने लगी जिससे यह विवाद पैदा हो गया कि विदेशी संस्थाओं से धन लेना चाहिए या नहीं। यह माना गया कि इससे असमान शक्ति सम्बन्ध विकसित होंगे, शोध की प्राथमिकताएं धन दाताओं द्वारा तय की जायेगीं। इस मुद्दे का दूसरा पहलू है शोधकर्ता की भूमिका। यदि महिला अध्ययन का उद्देश्य समझ बढ़ाना और क्रियाकलाप दोनों है तो आवश्यक है कि महिला अध्ययन सामाजिक परिवर्तन के प्रति प्रतिबद्ध हो। महिलाओं की दमनकारी वास्तविकता केवल कक्षाओं में पढ़ने और पढ़ाये जाने के लिए ही नहीं बल्कि उन्मूलित किये जाने के लिए है। जीवन इतिहास, आत्मकथा जैसे नवीन तकनीकों के अपनाये जाने और अनुभव आधारित आंकड़ों के प्रयोग का तर्क यह है कि इससे अपने बारे में जागरूकता बढ़ती है और परिवर्तन के लिये प्रेरणा मिलती है। दमन और बढ़ती पहचान के रूप में अपने अनुभवों की अभिव्यक्ति एक तरफ तो बदली हुई परिस्थिति को दर्शाती है जिसमें एक महिला अपनी आंतरिक पीड़ा को खुल कर ईमानदारी से अभिव्यक्त करती है तथा अपने नितांत निजी संबंधों की समालोचना करती है। दूसरी ओर यह बोध कभी न कभी इस सम्बन्ध को बदलाव की ओर ले जाता है। यदि महिला आंदोलनों का समर्थन उपलब्ध है तो यह बदलाव और तेजी से आ सकता है। निश्चित रूप से क्रियाकलाप के विभिन्न स्तर है किन्तु गतिविधि और समानुभूति महिला अध्ययन में सबसे महत्वपूर्ण है। महिला अध्ययन के विशेषज्ञों और महिला कार्यकर्ताओं के संयुक्त प्रयासों से भारतीय महिलाओं की समस्याओं की गंभीरता पर अन्तर्दृष्टियाँ प्रदान करने वाले दो महत्वपूर्ण दस्तावेज आये। वे हैं : स्वरोजगार प्राप्त महिलाओं और अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं के लिए गठित आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट ''श्रमशक्ति'' और महिलाओं के लिए जारी राष्ट्रीय संदर्श योजना (1988–2000)। इन दस्तावेजों ने मुख्य धारा की राजनैतिक निकायों और महिला संगठनों को एक राजनैतिक एजेंडा उपलब्ध कराया।

नवीन स्वायत्त महिला समूहों की कार्यविधि

नवीन महिला समूहों के गठन की पहल करने वाली अधिकतर महिलाये परिवार, शैक्षणिक और धार्मिक संस्थाओं और वृहत्तर समाज में सत्तावादी संरचनाओ के बिल्कुल खिलाफ थीं क्योंकि ये संरचनाएँ महिलाओं में आलोचनात्मक चिन्तन की अनुमति नही देती थी और न ही इन संरचनाओं ने उन्हें एक स्वतंत्र, बुद्धिमान और राजनैतिक रूप से सचेत मनुष्य के रूप में विकसित होने का मौका दिया। अतः उनका यह स्पष्ट दृष्टिकोण था कि समूह के प्रत्येक सदस्य को अपने विचार व्यक्त करने तथा सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया के आधार पर अंतरंग कामकाजी रिश्ते बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। शुरुआत में यह विधि नए प्रकार की महिला कार्यकर्ताओं को तैयार करने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई। यह महिलाएं बौद्धिक रूप से प्रबुद्ध, राजनैतिक रूप से सुलझी हुई थीं और अपने छोटे समूहों में एक दूसरे का समर्थन करने वाली थीं क्योंकि उनका कोई राजनैतिक स्वामी नही था जो उनके पहल को नियंत्रित करता और उनसे धन की उगाही, अनुवाद, टंकण, चिट्ठी पत्री, सफाई राजनैतक समूहों के सदस्यों के लिए भोजन बनाने जैसे रोजमर्रा की गतिविधियों में उलझा कर उनकी क्षमताओं को सीमित कर सके। ऐसे समूहों ने मद्रास (अब चेन्नई), बंगलोर, हैदराबाद, बम्बई (अब मुम्बई), पुणे और दिल्ली में कई दस्तावेज, स्थितिपत्र (पोजीशन पेपर), घोषणापत्र, प्रचार पुस्तिकाएं प्रकाशित की और अन्य देशों के महिला मुक्ति आन्दोलनों से सम्बंधित बहुत सारे दस्तावेजों का पुनर्प्रकाशन किया जिनमे ऐसी बहसें थीं जिनका परिस्थितियों से सीधा जुड़ाव था। उनमे अपने जैसी सोच वाली अधिक से अधिक महिलाओं तक पहुँचने की तीव्र इच्छा थी। जहाँ एक तरफ उनकी बैठकें नए विचारों और ज्ञानवादी मुद्दों पर विवादात्मक कुशलता से भरी होती थीं वही दूसरी तरफ उनमे महिलाओं की तात्कालिक समस्याओं पर गहन चिंता भी झलकती थीं। वे मानती थी कि महिलाओं के मुद्दों को दैनिक आधार पर उठाया जाना चाहिए और पितृसत्तात्मक शक्ति को जीवन के 'व्यक्तिगत', राजनैतिक', दोनों क्षेत्रों में चुनौती दी जानी चाहिये। साथ ही साथ उन्होंने वैयक्तिक महिलाओं का समर्थन, जन आंदोलनों के साथ एकजुटता और अलग अलग मुद्दों पर संयुक्त मोर्चे पर काम आरम्भ कर दिया किन्तु साथ ही वे अपनी अपनी राजनैतिक स्वायत्तता और संगठनात्मक पहचान को बनाये रखने के लिए प्रतिबद्ध थी। ये समूह अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओँ में प्रकाशित अपनी पत्रकों, मिमियोग्राफ किये गए दस्तावेजों और पत्रों के द्वारा एक दूसरे के संपर्क में बनी रहीं। ये पूरी तरह से अनौपचारिक रूप से काम करती थी और अपनी बैठकों का आयोजन किसी सदस्य या समर्थक के घर पर आयोजित करती थी। 1977 से 1980 के दौरान मात्र

महाराष्ट्र में महिलाओं के लिए कार्यशालाओं, महिला सम्मेलनों और महिला जमावड़ों की एक नई संस्कृति बनी जिसमे विभिन्न राजनैतिक दृष्टिकोणों वाली महिलाओं को आमंत्रित किया जाता था। चूंकि ये समारोह (ब्राह्मणवादी हिंदुत्व के साँचे में) बहुवर्गीय और बहुजातीय थीं, इनमे विभिन्न व्यवसायों में लगी महिलाओ ने अपने अनुभवों को साझा किया और अपनी मांगें रखीं। इन महिलाओं में शामिल थीं–कृषि श्रमिक, बीड़ी बनाने वाली, औद्योगिक कामगार, विद्यार्थी, शिक्षक, पत्रकार, लेखिकाएं, शोधकर्ता और सफेदपोश कर्मचारी।

स्वायत्त महिला समूहों का प्रसार

बलात्कार के विरूद्ध 1980 में हुए राष्ट्रव्यापी अभियानों के परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न शहरों और कस्बों में स्वायत्त महिला समूहों का उद्भव और प्रसार हुआ। फोरम अगेंस्ट ऑप्रेशन ऑफ वीमेन (मुम्बई), सहेली (दिल्ली), स्त्री शक्ति संगठन (हैदराबाद) और विमोचना (बैंगलोर) जैसे समूहों को दृश्य–श्रव्य मीडिया से बहुत प्रचार मिला क्योंकि उस समय महिलाओं के विरुद्ध हिंसा का मुद्दा सबसे सनसनीखेज एवं नया था। हिंसा की शिकार महिलाओं के परिवारों के सदस्य, खासकर पिता और भाई इन महिला समूहों में खूब आते थे। बाद में पीड़ित महिलाएं अपने आप इन समूहों के पास आने लगीं। हिरासत में हुई बलात्कार की वारदातों, घरेलू हिंसा और दहेज उत्पीड़न के विरुद्ध आंदोलन और प्रचार करते इन समूहों को यह अहसास हुआ कि हिंसा पीड़ित महिलाओं के साथ निरंतर कार्य करने और उनके पुनर्वास संबंधी देखभाल के लिए एक ऐसे संस्थागत ढाँचे को विकसित करने की आवश्यकता थी जो एकजुटता (आपसी परामर्श) और बहन भाव के नारीवादी सिद्धान्तों के अनुसार काम करे। भारत की आपराधिक कानून की व्यवस्था ने इन समूहों के लिए पुलिस के साथ अच्छा तालमेल बिठाना आवश्यक कर दिया ताकि हिंसापीड़ित महिला को तुरंत राहत मिल सके। सुधार गृहों में रहने वाली महिलाओं और परित्यक्ताओं/एकाकी महिलाओं/निराश्रितों के आश्रय स्थलों में रहने वाली महिलाओं की दशा इतनी घृणास्पद और बर्बर थी कि उनपर पुनर्वास के लिए विश्वास नही किया जा सकता था। वास्तव में इनसे पीड़ित कई महिलाओं ने नई महिला समूहों से संपर्क किया। महिला कार्यकर्ताओं को पुलिस वालों, कानूनी तंत्र और सार्वजानिक अस्पतालों के पीड़ित को फांसने के रवैये और यौन नैतिकता के दोहरे पैमाने, लैंगिकवादी टिप्पणियों और घृणित परिहास का सामना करना पड़ा। हर कदम पर उन्हें वर्ग, जाति और संप्रदाय से जुड़े भेदभाव का सामना करना पड़ा। इसने महिला समूहों और स्थापित संस्थाओं को एक दूसरे के सामने खड़ा कर दिया पर समय के साथ उन्हें यह अहसास हो गया कि नजरिये में परिवर्तन के लिये कानूनी सुधारों, हस्तक्षेप की विधियों और कर्मचारियों का प्रशिक्षण जैसे विकल्पों का सुझाव देना आवश्यक था, जनशिक्षण के लिए विश्वासप्रद शैली में लिखित साहित्य आवश्यक था और अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचने के लिए दृश्य–श्रव्य सामग्री का होना आवश्यक था। महिलाओं के प्रश्न को समझने के लिए पेशेवर संगठन और शैक्षणिक संस्थाएं इन महिलासमूहों से संपर्क कर रही थी। इस परिप्रेक्ष्य में 1980 के दशक में प्रतिरोध–प्रचार, मीडिया की निगरानी, जागरूकता उत्पन्न करने के लिए संसाधन सामग्री, सांस्कृतिक विकल्पों के निर्माण, प्रकाशन, शोध एवं दस्तावेजीकरण, बुकस्टॉल और कानूनी सहायता कार्य पर केंद्रित विशिष्ट सरोकार रखने वाले समूह अस्तित्व में आये जो 1990 के दशक तक संगठित हो गए. उन्होंने एक दूसरे के विकास में अनुपूरक भूमिकाएं निभाईं।

नवीन महिला समूहों द्वारा उठाये गए मुद्दे

महिलाओं के विरुद्ध की जाने वाली हिंसा को समाप्त करने के लिए चलाया जाने वाला अभियान

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मथुरा के खिलाफ दिए गए फैसले के विरुद्ध आयोजित अभियान से इस आंदोलन को गति मिली। मथुरा एक आदिवासी किशोरी थी जिसका 1972 की एक रात महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले के एक पुलिस थाने में पुलिस कर्मियों ने सामूहिक बलात्कार किया था। सत्र न्यायालय, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में सहानुभूतिपूर्ण वकील वसुधा धगमवार द्वारा आठ साल तक तक लड़े गए कानूनी लड़ाई में मथुरा ने अपना सब कुछ–अपनी प्रतिष्ठा, अपना आत्मसम्मान, अपनी विश्वसनीयता खो दी। सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया की पुलिस वालों ने मथुरा का बलात्कार नहीं किया बल्कि मथुरा ने बदचलन औरत होने की वजह से सम्भोग के लिए अपनी सहमति दी। धगमवार और उनकी तीन सहकर्मियों ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को चुनौती देता हुआ एक खुला पत्र लिखा जो तर्क की दृष्टि से विश्वसनीय शैली में लिखा गया अत्यंत मार्मिक पत्र था। अखबारों–पत्रिकाओं में इस पत्र को व्यापक रूप से प्रचारित किया गया। इस मुद्दे से जुड़े दो मुख्य बिंदु थे : मथुरा बलात्कार केस को फिर से खोला जाये और बलात्कार से जुड़े उन कानूनों में संशोधन किया जाए जिनमे न केवल बलात्कार को संकीर्णता से परिभाषित किया गया था बल्कि सबूत देने की जिम्मेवारी स्त्री पर डाली गयी थी। इन मांगों के लिए संघर्ष करने के लिए कई समूह बनाये गए (कुमार, 1997)। उन्होंने हस्ताक्षर एकत्र करने के लिए याचिकाएं भेजीं; अध्ययन मंडलियां आयोजित कीं जिनमे अनुभवी वकीलों के व्याख्यान होते थे; सम्बंधित अधिकारियों के सामने रैलियां निकाली, बैठकें की, धरने दिए, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर पोस्टर प्रदर्शनियां की, नाटक, नारे, गीत तैयार किये, पहली बार महिलाओं की समस्याओं पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में आलेख एवं सम्पादक के नाम पत्र लिखे (फोरम अगेंस्ट ऑप्रेशन ऑफ वीमेन, 1985)

आरंभ में उन्होंने विशिष्ट महिला–मुद्दों पर ध्यान दिया, जैसे पत्नी से दुर्व्यवहार, दहेज से जुडी हत्याएं, बलात्कार एवं छेड़खानी, कामोत्तेजक फिल्में, कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न पर नाटकों एवं साहित्य का सृजन। राज्य तंत्र के ढीले रवैये/दुर्भावना की वजह से आक्रामक गतिविधियों, सामाजिक बहिष्कारों, उत्पीड़कों का घेराव, दहेज की बरामदगी के लिए शादी वाले घरों पर छापे जैसे उपायों का सहारा लिया गया। प्रत्यक्ष कार्रवाइयों के इन अनुभवों से कार्यकर्ताओं ने (कामगार वर्ग, मध्य वर्ग एवं उच्च वर्ग के) आधुनिक परिवारों, विभिन्न धार्मिक समुदायों एवं विभिन्न जातीय संगठनों के आपसी शक्ति संबंधों को समझा (पटेल, 1985)।

अन्यायपूर्ण पारिवारिक कानूनों के विरुद्ध संघर्ष

नारीवादी वकील इंदिरा जय सिंह दावे से कहती हैंः ''समानता एवम पक्षपातहीनता की संवैधानिक गारंटी पक्षपातपूर्ण व्यक्तिगत कानूनों के वजह से उलझ गयी है. जिसने जेंडर असमानता को संस्थागत कर दिया है'' (2005)। विवाह, तलाक, भरण–पोषण, निर्वाह–धन, संपत्ति–अधिकार, बच्चों की रखवाली एवं अभिभावकत्व के अधिकार जैसे समस्याओं का सामना कर रही महिलाओं की सहायता करते हुए कार्यकर्ताओं ने यह समझ लिया था कि प्रचलित पर्सनल कानून एवं अधिकांश रूढ़िजन्य विधि (कस्टमरी लॉ) महिलाओं के विरुद्ध पक्षपातपूर्ण थे। मिताक्षरा संहिता के अनुसार हिन्दू बेटियों को पैतृक संपत्ति में सहदायिकी का अधिकार नहीं है। पति द्वारा परस्त्रीगमन के आधार पर ईसाई महिलाएं तलाक नहीं ले सकती। परस्त्रीगमन के साथ क्रूरता, पुरुषगमन, पशुगमन हो तभी तलाक संभव है. दूसरी तरफ ईसाई पति अपनी पत्नी को परपुरुषगामी घोषित कर तलाक दे सकते हैं. ये पुराने कानून उपनिवेशवादी दौर में ब्रिटिश नौकरशाहों के हितों की रक्षा के लिए बनाये गए थे जिनकी वैधानिक पत्नियां इंग्लैंड में थीं और जो स्वयं भारतीय (या उनकी भाषा में कहें तो 'देसी') महिलाओं के साथ सहवास करते थे। पारसी बेटियां यदि गैर पारसी पुरुषों के विवाह कर ले तो उनके संपत्ति के अधिकार छिन जाते थे तथा यदि गैर पारसी महिला पारसी पुरुष से विवाह कर ले तो पारसी पर्सनल कानून के अंतर्गत पति की आधी संपत्ति पर ही उसका हक होता था। पर्दा प्रथा थोप कर, पुरुषों को बहुविवाह एवं एकतरफा तलाक का अधिकार देकर तथा तलाकशुदा मुस्लिम महिलाओं को देखभाल अधिकार से वंचित कर शरिआ ने मुस्लिम महिलाओं को कुचल दिया है। इन सभी स्वीय विधियों (पर्सनल लॉ) की मूलभूत धारणा यही है कि महिलाएं पुरुषों के बराबर नहीं हैं। चाहे वो किसी भी धार्मिक पृष्ठभूमि के हों, सभी स्वीय विधियां पितृसत्तात्मक विचारधारा द्वारा

संचालित होते हैं। ये कानून पितृवंश, पितृस्थानिकता, पुरुषों और महिलाओं के लैंगिक नैतिकता में दुहरे स्तर को स्थायित्व देते हैं और महिलाओं को पुरुषों पर आश्रित समझते हैं। इसीलिए सभी विवाह, उत्तराधिकार एवं बच्चों के अभिभावकत्व से सम्बंधित स्वीय विधि किसी न किसी रूप में महिलाओं के साथ भेदभाव करती हैं।

विभिन्न समुदायों की महिलाओं ने व्यक्तिगत स्तर पर स्वीय विधियों के भेदभावपूर्ण पहलूओं की संवैधानिक वैधता को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी है। सभी धार्मिक पृष्ठभूमियों की शिक्षित, कामकाजी महिलाओं तथा गृहिणियां धर्मनिरपेक्ष महिला संगठनों के पास जा रही हैं। अपने पैदाईशी घर में उन्हें जबरन विवाह; अंतर्जातीय, अंतर्वर्गीय एवं अंतर्धार्मिक विवाह की स्थिति में कातिलाना हमलों, एवं संपत्ति के झगड़ों जैसी समस्यायों का सामना करना पड़ता है, जबकि ससुराल में उन्हें परस्त्रीगमन, द्विविवाह, बहुविवाह, तलाक, बच्चे/बच्चों की निगरानी, सम्बन्धियों द्वारा यौनाचार जैसे मुद्दों का सामना करता पड़ता है। चूँकि पर्सनल कानून का मुद्दा धार्मिक पहचान से गुंथा हुआ है, धर्मनिरपेक्ष महिला आंदोलन को विभिन्न समुदायों के कुलीनों, जन संगठनों, पितृसत्तात्मक धर्मनिरपेक्ष धड़े तथा सामूहिक वोट के लिए लालायित संसदीय दलों के जबरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा। महिलाएं (तलाकशुदा, परित्यक्ता, एकल तथा बाध्य विवाहिताएं) व्यक्तिगत स्तर पर रूढ़िजन्य विधियों में भेदभाव पर सवाल उठाती रही हैं। महाराष्ट्र एवं बिहार की आदिवासी महिलाएं भूमि अधिकारों की मांग के लिए सर्वोच्च न्यायालय में याचिकाएं दायर करती रही हैं। कई महिला समूहों (सहेली, विमोचना एवं FAOW) तथा मानव अधिकारों पर काम करने वाले वकीलों के दलों (लॉयर्स कलेक्टिव तथा इंडियन सोशल इंस्टिट्यूट) ने जेंडर–न्याय सुनिश्चित कराने वाले तथा धर्मनिरपेक्ष पारिवारिक कानूनों के तकनीकी विवरणों वाले मसौदे तैयार किये हैं।

वैधानिक सुधार

पिछले तीस वर्षों के दौरान महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा से जुड़े कानून अस्तित्व में आये हैं। भारत फैमिली कोर्ट्स एक्ट, 1984 पारित करने वाला प्रथम देश था. घरेलू हिंसा में बची हुई महिलाओं के हितों की रक्षा के लिए महिला आंदोलन द्वारा डाले गए दवाब के परिणामस्वरूप घरेलू हिंसा से महलाओं का संरक्षण अधिनियम (2005) (PWDV Act, 2005) अधिनियमित हुआ। इस अधिनियम ने घरेलू हिंसा की परिभाषा को और व्यापक कर दिया। अब इसके दायरे में महिलाओं एवं वरिष्ठ नागरिकों ('मानसिक रूप से अस्वस्थ' प्रमाणपत्र के दुरूपयोग) के विरुद्ध हिंसा, घर के सदस्यों द्वारा किया गया यौनाचार तथा बलात्कार तथा महिलाओं और लड़कियों को जबरन वेश्यावृत्ति में धकेलने वाले रिश्तेदार भी शामिल थे. इस अधिनियम की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं: निवास के अधिकार की मान्यताय प्रोटेक्शन ऑफिसर्स की नियुक्ति का प्रावधान और सेवा प्रदाताओं की मान्यता; प्रोटेक्शन ऑफिसर्स और न्यायाधीशों का प्रशिक्षण; जागरूकता निर्माण, कानूनी, काउंसलिंग और अन्य सहायता सेवाओं के लिए बजट का निर्धारण।

बिल्कुल आरम्भ से ही कानूनी सुधार महिला आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिकता रही है। महिला संगठनों ने बलात्कार कानून (1980) और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 में सुधार के लिए अभियान चलाये। घरेलू हिंसा से महिलाओं को बचाने के लिए 30 सालों के सतत आंदोलन के परिणामस्वरूप 2005 का अधिनियम पास हुआ. इसी तरह जन्म के पहले कन्या भ्रूण की समाप्ति के विरोध में हुए संघर्ष (पटेल, 1988) ने पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (PCPNDT) अधिनियम, 1994 को जन्म दिया जिसे बाद में पूर्व गर्भाधान और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम, 2002 में संशोधित किया गया। कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न के मुद्दे पर गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा दायर याचिकाओं की वजह से से सर्वोच्च न्यायालय ने लैंगिक उत्पीडन के मामलो से सम्बंधित निर्देशिका जारी की। 1997 की विशाखा निर्देशिका का स्थान 2013 में महिलाओं का कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम ने ले लिया। अभी एक ऐसे कानून की आवश्यकता है जिससे सेक्स व्यापार तथा अंग प्रत्यारोपण के लिए पूरे देश में चल रही महिलाओं एवं लड़कियों की खरीद–बिक्री से निपटा जा सके।

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के कई मामलों का निपटारा स्थानीय समितियों, सामुदायिक संगठनों एवं लोक अदालतों में हो जाता है। महिला आंदोलन इस तथ्य पर बल देते हैं कि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा असमान शक्ति संबंधों की अभिव्यक्ति हैं। यदि महिलाओं को समुदाय सशक्त करे और व्यवस्था उनकी सहायता करे तो पलड़ा जेंडर न्याय के

पक्ष में झुक सकता है। नारीवादी अर्थशास्त्रियों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 पारित हुआ जिससे बेटियों को सहदायिकी संपत्ति में समान अधिकार मिले।

पिछले चार दशकों में नारीवादियों ने भेदभाव, अन्याय और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को चुनौती देनेवाली कई जनहित याचिकाएं दायर किये जिसमे कई मुद्दे शामिल हैं, जैसे : घरेलू कामगारों के अधिकार, एकल महिलाओं को चुड़ैल घोषित करके की जाने वाली हत्याएं (विच हंटिंग), गर्भनिरोध के हानिकारक उपाय, विकास के नाम पर विस्थापन, दहेज सम्बन्धी हत्याएं, प्रतिष्ठा के नाम पर की जाने वाली हत्याएं (ऑनर किलिंग), वनवासियों के आजीविका सम्बन्धी अधिकार, भूमि सम्बन्धी अधिकार इत्यादि।

महिलाओं के प्रजनन सम्बन्धी अधिकार

जब महिलाओं के प्रजनन सम्बन्धी अधिकारों की बात आती है तो हम पाते हैं कि भारत के अधिकतर महिला समूहों के प्रयत्न परिवार नियोजन कार्यक्रमों के नाम पर की जाने वाली ज्यादतियों पर केंद्रित रहे. अब भारतीय आयुर्विज्ञान शोध परिषद् (आई.सी.एम.आर.), अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) और प्रजनन शोध संस्थान (आई.आर.आर.) ने इंसान पर किये जाने वाले जैव चिकित्सकीय शोधों के वैज्ञानिक, चिकित्सा–कानूनी (मेडिको–लीगल) और प्रक्रियात्मक पहलूओं पर विचार की तत्परता दिखाई है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या निधि (यू.एन.एफ.पी.ए.) (1988) और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जनसंख्या नीतियों के सम्बन्ध में दिशानिर्देश तय किये हैं ताकि महिलाओं को जनसँख्या नियंत्रण के लिए लक्षित करने के बजाय महिलाओं के प्रजनन सम्बन्धी अधिकारों पर ध्यान केंद्रित हो सके (सेन, जर्मैन और चेन, 1994)। जैव–चिकित्सकीय शोध के लिए भी आचार–सम्बन्धी दिशानिर्देश बनाये गए हैं. फिर भी, दूर दराज के क्षेत्रों में गरीब महिलाएं आज भी अत्याचारपूर्ण बंध्याकरण शल्य क्रियाओं से गुजर रही हैं और उन्हें सुई द्वारा ली जाने वाली असुरक्षित दवाएं और मुंह से ली जाने वाली गर्भनिरोध की असुरक्षित गोलियां लेनी पड़ रही हैं। किशोरियों और गर्भपात पर हुए ताजा शोध किशोर गर्भाधान, देह व्यापार के लिए छोटी लड़कियों की खरीद–बिक्री और आपराधिक न्याय तंत्र की मिलीभगत पर रौशनी डालते हैं। लिंग निर्धारण के विरुद्ध चलाये गए अभियान के परिणामस्वरूप एक केंद्रीय कानून पारित हुआ जिससे गर्भवती महिलाओं के गर्भाशय के जांच (एम्निओसेंटेसिस), क्रोनिक विल्लस सैंपलिंग (CVS) और स्त्रीहत्या के लिए लिंग पूर्व चयन तकनीक प्रतिबंधित हो गए। पर वास्तविक जीवन में इस कानून को प्रभावी बनाने के बहुत कुछ किया जाना बाकी है। PCPNDT Act के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए डॉ साबू जॉर्ज ने सर्वोच्च न्यायालय में जनहित याचिका दायर की जिसका सेंटर फॉर इन्क्वारी इंटू हेल्थ एंड अलाइड थीम्स (CEHAT) और लॉयर्स कलेक्टिव ने संयुक्त रूप से समर्थन किया (पटेल, 2009)।

घटता शिशु लिंग अनुपात

लिंग अनुपात (प्रति हजार पुरुषों पर महिलाओं की संख्या) महिलाओं के प्रति समाज के नजरिये और जेंडर तथा विकास के बारे में सामाजिक विभाजकों के बदलते पहलूओं का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है। समानता की ओर : भारत में महिलाओं की दशा पर बनी समिति के प्रतिवेदन ने पहली बार इस चौंकाने वाली वास्तविकता की तरफ ध्यान खींचा। समिति के निष्कर्षों ने दो अत्यंत महत्वपूर्ण रुझानों की और ध्यान दिलाया, वो हैं कार्य प्रतिभागिता का घटता दर और गिरता लिंग अनुपात। ये दोनों महिलाओं की अवस्था को जांचने के महत्वपूर्ण सूचक थे। पिछले वर्षों में इस प्रतिवेदन ने महिला कार्यकर्ताओं, विद्वानों और नीति निर्माताओं को इन उभरते सामाजिक रुझानों के व्यापक संबंधों के साथ जुड़ने में समर्थ बनाया। हालाँकि घटते लिंग अनुपात की समस्या बदतर और ज्यादा जटिल हो गयी है, बल्कि वास्तव में कुछ राज्यों में तो इसने भयावह रूप ले लिया है। इस सम्बन्ध में अंतर्राष्ट्रीय मंचों और संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा चिंता प्रकट की जाती रही हैं। शोध अध्ययनों ने इस समस्या के विभिन्न पहलूओं को उजागर किया है। इन अध्ययनों ने यह भी बताया कि स्थायी पितृसत्तात्मक मानदंडों एवं मानसिकता के माहौल में सहायता प्राप्त प्रजनन सम्बन्धी तकनीकों एवं कार्यप्रणालियों में उन्नति की वजह से इस तरह के जन्म–पूर्व लिंग चयन की संभावना बहुत ज्यादा हो गयी है और बढ़ती जा रही है. कार्यकर्ताओं ने PCPNDT Act और उसके प्रावधानों को लागू करने एवं अधिसूचना तथा निर्देशिका लागू करने के लिए राजनैतिक इच्छाशक्ति की पूरी कमी की ओर लगातार ध्यान दिलाया है। जिसकी वजह से पतनशील सामाजिक मान्यताएं एवं आधुनिक कार्यप्रणालियों का मेल संभव हो पाता है। इस गठजोड़ को डॉक्टरों और प्रसव

पूर्व जांच विशेषज्ञों के विशाल एवं विविध समुदाय के रूप में एक लापरवाह साथी मिल जाता है। ज्यादा से ज्यादा जिले और राज्य लिंग अनुपात के राष्ट्रीय प्रारूप के पास आते जा रहे हैं और यह प्रवृत्ति कुछ क्षेत्रीय विभिन्नताओं के साथ और उसके परे धीरे धीरे सर्वव्यापी होती जा रही है. फिर भी क्षेत्रीय स्तर पर लिंग अनुपात और उससे जुड़े रुझानों के प्रारूप में विभिन्नता पाई जाती है। पिछले दशकों में लिंग अनुपात तेजी से घटा है। जहाँ 1901 में यह 972 था 1991 यह घट कर 927 रह गया. इसके बाद सतत वृद्धि दर्ज करते हुए यह अनुपात 2011 में यह 948 हो गया।

1991–2011 के दौरान शिशु लिंग अनुपात (0–6 वर्ष के आयुवर्ग में प्रति हजार लड़को पर लड़कियों की संख्या) के आंकड़े यह बताते हैं कि पूरे उत्तर और पश्चिम क्षेत्रों में यह खाई 2011 में और गहरी और चौड़ी हुई है जबकि 2001 में केवल हरियाणा, पंजाब, दिल्ली और गुजरात के कुछ क्षेत्रों में ही शिशु लिंग अनुपात बहुत कम था। आंकड़ों के परीक्षण से निम्नलिखित रुझान मिलते हैंः 1901–2011 के दौरान बाल लिंग अनुपात (0–6 आयुवर्ग में प्रति हजार पुरुषों में महिलाओं की संख्या) के आंकड़ों की राज्यवार तुलना करें तो स्पष्ट है कि राज्यों के बीच अंतर गहरे हुए हैं। जहाँ 2001 में केवल हरियाणा, पंजाब, दिल्ली और गुजरात के कुछ हिस्सों में बाल मृत्युदर बहुत कम था, 2011 में यह अंतर पूरे उत्तर और पश्चिम भारत में फैल गया है। बाल मृत्यु दर के कुछ सबसे अच्छे आंकड़े उत्तर पूर्व के राज्यों में मिलते हैं। तथापि 2001 और 2011 के आंकड़ों के यदि तुलना करें पता चलता है मणिपुर, नागालैंड, और अरुणाचल प्रदेश के कुछ हिस्सों की स्थिति अच्छी नहीं है। सेंटर फॉर विमेंस डेवलपमेंट स्टडीज की प्रो. मेरी ई. जॉन ने विभिन्न राज्यों में किये गए संयुक्त अध्ययन के निष्कर्ष प्रस्तुत किये (जॉन, कौर, पलरीवाला, राजू और सागर, 2008)। इस अध्ययन ने यह जानने का प्रयत्न किया कि परिवार लिंग चयन क्यों करते हैं या इसके लिए क्यों हामी भरते हैं जो बेटे के लिए तरजीह/प्राथमिकता या बेटी के प्रति विरक्ति के रूप में व्यक्त होता है। उन्होंने सांस्कृतिक रूढ़ियों की स्वीकृत धारणाओं, जो कि मोटे तौर पर पारम्परिक कहे जा सकने वाले सांस्कृतिक मूल्य, मानसिकताएँ और माताओं/परिवारों के रवैये तय करती हैं, को निर्णय निर्माण की प्रक्रिया के लिए जिम्मेवार ठहराने के बजाय इसे प्रभावित करने वाले ठोस कारकों की तरफ ध्यान दिलाया। ज्यादा परेशान करने वाला तथ्य यह है कि लड़कियों को पढ़ाने और उनके विवाह की उम्र को बढ़ाने जैसे लिए गए निर्णय जो अन्यथा प्रकट रूप से आधुनिक और प्रगतिशील थे, वो दरअसल इस कारण से लिए गए थे ताकि लड़कियों की "अच्छी शादी" हो सके. इससे दहेज और विवाह से जुड़े अन्य खर्चों के लिए संसाधनों का आवंटन आवश्यक कर दिया। यह स्पष्ट है कि जब भेदभाव प्रकट रूप में नहीं होते थे तब भी लिंग चयन जारी था। छोटे परिवारों का मानक ''कम से कम एक लड़का और अधिक से अधिक एक लड़की'' के रूप में बदल गया। जॉन ने माना कि नव–उदारवाद, कार्यप्रतिभागिता के गिरते दर और गिरते लिंग अनुपात में कोई सम्बन्ध अवश्य है. उन्होंने कहा कि नूतन प्रजननात्मक तकनीकों और सहायता प्राप्त प्रजनन के तरीकों ने लिंग चयन और पूर्व चयन के नई संभावनाओं को जन्म दिया।

फिर भी, अच्छी खबर यह है कि जेंडर पूर्वाग्रह पर आधारित लिंग चयन की प्रथा की वजह से जन्म के समय गायब लड़कियों की संख्या 2007–2012 के दौरान 3.3. लाख प्रति वर्ष थी। इसके पहले के 6 वर्षों के 5.8 लाख प्रति वर्ष के औसत के तुलना में जन्म के समय गायब लड़कियों की संख्या में कमी दिखती है। 2004 से 2006 की अवधि में पहली बार परिवर्तन के स्पष्ट संकेत मिलते हैं (यू.एन.एफ.पी.ए., 2015)। 2004 के बाद जन्म के समय गायब लड़कियों की संख्या में कमी को जेंडर पूर्वाग्रह आधारित लिंग चयन को रोकने के लिए किये गए कानूनी, नीतिगत एवं कार्यक्रम केंद्रित उपायों और इनके परिणामों के उत्तर में हुए सामुदायिक हलचलों के पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। कुछ राज्यों में लिंग अनुपात के जेंडर असंतुलन पर काबू पाने के लिए प्रयास चल रहें हैं। PCPNDT Act के क्रियान्वयन के साथ लड़कियों के महत्व को स्थापित करने, जेंडर सम्बन्धी पक्षपातपूर्ण नजरिये का प्रतिकार करने और ऐसे पक्षपातपूर्ण आचरणों के प्रतिकूल परिणामों के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए किये गए व्यापक प्रयत्नों से मदद मिली है। भारत में जेंडर समता के लिए मजबूत जन–नीतियां, जबरदस्त मीडिया अभियान और कानून उपलब्ध हैं। मीडिया में जेंडर आधारित लिंग चयन की बढ़ती हुई दृश्यता इस मुद्दे पर बढ़ते ध्यान और विमर्श का संकेतक है। अब यह मुद्दा विभिन्न प्रकार के हितधारकों तक जा पहुँचा है जिसमे

शामिल हैंः नीति निर्माता, प्रशासक, न्यायपालिका, मेडिकल समुदाय, मीडिया और सामुदायिक नेता (यू.एन.एफ.पी.ए., 2015)।

मादक द्रव (ताड़ी/शराब) के विरुद्ध आंदोलन

सातवें दशक के मध्य से, देश के विभिन्न क्षेत्रों–आंध्रप्रदेश, मणिपुर, महाराष्ट्र–की आदिवासी महिलाएं शराब की बिक्री के खिलाफ संघर्ष कर रही हैं क्यूंकि पुरुषों में नशाखोरी की वजह से परिवार नष्ट होते हैं और महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध घरेलू हिंसा होती है. आँध्रप्रदेश में 1992–93 में ताड़ीबंदी आंदोलन बहुत मजबूत था जो अन्य राज्यों में विभिन्न स्तरों पर फैल गया। आंध्र प्रदेश में 40000 से ज्यादा महिलाओं का इकट्ठे होकर देसी शराब की नीलामी न होने देना महिला आंदोलन का एक ऐतिहासिक अध्याय है। महाराष्ट्र में स्वशासन की स्थानीय संस्थाओं एवं शहरी एवं ग्रामीण स्वशासन निकायों की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों ने उन प्रखंडों/ग्रामों को शराब मुक्त घोषित करने के लिए राज्य सरकार को बाध्य किया जिस क्षेत्र की 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं शराब की बिक्री और वितरण के विरुद्ध ग्राम सभा के आम बैठक में हाथ उठा कर वोट दे दें।

संसद और विधान मंडलों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण के लिए चलाया जाने वाला अभियान

1990 के दशक के उत्तरार्ध से भारतीय नारीवादी विधान सभाओं/परिषदों और संसद के उच्च और निम्न सदनों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण के लिए अभियान चला रहे हैं. महिला आरक्षण विधेयक जिसमें संसद में महिलाओं के लिए 33% सीटों पर आरक्षण का प्रावधान है, एक दशक से ज्यादा समय से लंबित है। यह माना जाता है कि पितृसत्तात्मक शक्तियों का विरोध इसे पास नहीं होने दे रहा। किन्तु जहाँ इस विधेयक के पक्षधर जेंडर न्याय के विचार को अपने दावे का आधार बनाते हैं, जो इसके विरोध में हैं उन्हें पितृसत्तावादी के रूप में श्रेणीबद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसके विरोधी, जिनमे महिलाएं भी शामिल हैं, उन जातियों से हैं जिनकी एक वैध आशंका है कि महिलाओं के लिए 33% सीटों के सामूहिक आरक्षण से (जिस प्रस्ताव पर अभी विवाद चल रहा है), 'निम्न' जाति के पुरुषों का स्थान 'उच्च' जाति की महिलाएं ले लेंगी। आज एक तिहाई सीटों को महिलाओं के लिए तुरंत आरक्षित कर दिया जाए तो वो महिलाएं मैदान में आ जाएंगी जिनके पास चुनाव लड़ने के लिए पहले से ही सांस्कृतिक और राजनैतिक पूँजी है, और भारत जैसे सामाजिक असमानता वाले देश में ये महिलाएं निश्चित रूप से अभिजात वर्ग से ही हो सकती हैं।

इस प्रकार विधेयक के वर्तमान स्वरुप के विरुद्ध यह तर्क है कि महिलाओं के लिए आरक्षण में अन्य अशक्त समूहो को भी शामिल किया जाना चाहिए अर्थात कोटे के अंदर कोटे की बात की जा रही है जिसके अनुसार इस 33% के अंदर अन्य पिछड़ी जातियों और मुस्लिम महिलाओं के लिए भी आरक्षण होना चाहिए। अनुसूचित जातियों/जनजातियों की महिलाओं के लिए 22.7% आरक्षण तो संवैधानिक आवश्यकता है जो स्वतः प्रभावी हो जायेगा. अन्य शब्दों में, विधेयक के तीव्र विरोध को महिला–विरोधी कह के खारिज नहीं किया जा सकता। महिलाओं के लिए आरक्षण के सभी समर्थन मजबूत पितृसत्ता–विरोधी श्रोतों से ही नहीं मिल रहा है. ये वही दल हैं जो महिला उम्मीदवारों को उतारने से लगातार मुकरते रहे हैं और जिनके नीति निर्धारण निकायों में शायद ही कोई महिला रही हो बशर्ते वो एक सही पारिवारिक पृष्ठभूमि से हों. इन्हीं दलों–जिसमे कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (मार्क्सवादी) से लेकर भारतीय जनता पार्टी (बी जे पी) और उनके बीच के अन्य दल शामिल हैं–के पिछले 65 सालों के पितृसत्तावादी रवैये की वजह से ही तो महिलाओं के लिए आरक्षण जरूरी हो गया है।

1992 से स्थानीय स्वशासन निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षण के अनुभव

विभिन्न राज्यों (जैसेः गुजरात, कर्नाटक और पश्चिम बंगाल) में किये गए अध्ययनों ने यह सत्यापित किया है कि यद्यपि चुनी गयी महिलाओं के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़े हैं तथापि कुल मिला जुला कर उस क्षेत्र विशेष के प्रभावी जाति समूह की जड़ पकड़ चुकी सत्ता और मजबूत हुई है। अर्थात पंचायती राज संस्थाओं में प्रभावी जातियों के पुरुषों का स्थान प्रभावी जाति की महिलाओं ने ले लिया (पटेल, 2009)। इसलिए ऐसा लगता है महिलाओं के लिए समग्र आरक्षण से समाज के प्रभावी समूहों और जातियों की महिलाओं सत्ता में आईं हैं। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कानून का विरोध इस तथ्य के आधार पर नही है नागरिक की श्रेणी वैश्विक है और किसी अन्य पहचान से इसे अचिन्हित रखना चाहिए इसकी वैश्विकता स्त्री

पहचान को शामिल कराने से खंडित नही होनी चाहिए। बल्कि इसका विरोध (जाति/समुदाय) के पहचानों और अंतरों को जेंडर के अंतर्गत डालने को लेकर है यानि यह विरोध कोटा के अंतर्गत कोटे की स्थिति को लेकर है।

राजनैतिक दलों में महिलाएं

अप्रैल 2001 से 2015 के बीच राजनैतिक दलों के आधिकारिक सूची के विश्लेषण के अनुसार 2001 के बाद भारत में महिला–उन्मुखी एजेंडे वाले कम से कम 14 राजनैतिक दलों का उदय हुआ। लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के सांख्यिकीय प्रतिवेदनों के अनुसार इनमे से 5 दलों ने पिछले 15 वर्षों में या तो लोकसभा या विधानसभा के चुनाव लड़े। सभी उम्मीदवारों की जमानत राशियां जब्त हो गईं। सफलता के निम्न दर के बावजूद इनमे से अधिकतर दल बचे रहे और एक ऐसे देश में जहाँ संसद में केवल 11.4% ही महिलाएं हैं महिलाओं के मुद्दों पर आधारित दलों का पंजीकरण पिछले कुछ वर्षों में बढ़ा है।

चुनावी उपलब्धि का हर कतरा मायने रखता है

चुनावी दृष्टि से महिलाओं के लिए भारतीय परिदृश्य निराशाजनक है। लोकसभा की 543 सीटों के लिए 2014 के आम चुनाव में केवल 668 महिलाएं उतारीं गईं जोकि कुल उम्मीदवारों का 8.1% है। केवल 62 महिला उम्मीदवार जीत सकीं अर्थात जितनी महिलाएं चुनाव में खड़ी हुईं थी उनका 9.3% विजयी हुईं और 525 महिला उम्मीदवारों की जमानत जब्त हो गयी।

जैसा कि हमने पहले जिक्र किया है संसद में महिलाओं का प्रतिशत जो 11.4 है, अन्तर्संसदीय संघ और यू एन वीमेन के द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार 22% के अन्तर्राष्ट्रीय औसत से काफी कम है और भारत का स्थान 145 देशों में 111वां है।

भारत के राजनैतिक परिदृश्य में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण समान रूप से निराशाजनक है। बी.जे.पी., जिसने 2014 के चुनाव में लोकसभा की 543 सीटो में से 282 पर जीत दर्ज की थी, के 428 प्रत्याशियों में से केवल 38 यानि 8.9% महिलाएं थीं। जबकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 464 उम्मीदवारों में 60 यानि 12.9% महिलाएं थीं। वामपंथी दलों, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) में महिला उम्मीदवारों के प्रतिशत क्रमशः 8.9 और 11.8 रहे। अन्य दो राष्ट्रीय दलों बहुजन समाज पार्टी और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी की तरफ से उतारे गए महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत क्रमशः 5.4 और 11.1 रहा।

चुनाव लड़ रही महिला उम्मीदवारों के 21.9% ही राष्ट्रीय दलों द्वारा उतारे गए थे। विडम्बना यह है कि इनमे से अधिकतर दलों ने राज्यसभा में महिला आरक्षण विधेयक 2009 का समर्थन किया था जो विधायिका में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण सुंनिश्चित करता है। जैसा कि प्रो. जोया हसन ने अपनी सम्पादित पुस्तक 'भारत में दल और दलीय राजनीति' की भूमिका में सुझाया है, "राजनैतिक दलों ने लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं, खासकर समाज के ऐतिहासिक रूप से वंचित तबकों को राजनैतिक व्यवस्था में शामिल करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।" हालांकि अमिता बासु अपने प्रतिवेदन 'दक्षिण एशिया में महिलाएं, राजनैतिक दल और सामाजिक आंदोलन' में जैसा कहती हैं वह बिल्कुल सही लगता है। बासु लिखती हैं कि "महिलाओ को लामबंद करने में दलों की सफलता के बारे कहने को कुछ ज्यादा नही है। अधिकतर राजनैतिक दल पुरुष नियंत्रित हैं वे महिलाओं और उनके हितों की अनदेखी करते हैं। जहाँ महिलाओं ने सत्ता के शीर्ष पर राज्य प्रमुख और सामाजिक आन्दोलनों के जमीनी स्तर पर जाहिर तौर पर महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई है वहीं राजनैतिक दलों में उनका प्रतिनिधित्व बहुत कम रहा है"।

यह तथ्य कि 2014 के आम चुनाव में 93.6% महिला उम्मीदवारों की जमानत जब्त हो गयी थी, बताता है कि न तो राजनैतिक दल और न ही मतदाता महिलाओं को अपना प्रतिनिधि बनाने के प्रति गम्भीर हैं। फिर भी महिला उन्मुखी दलों का उदय, भले ही वह कितना भी कम क्यों न हो, उत्साहवर्धक है। तथापि समान प्रतिनिधित्व मुख्यधारा की राजनीति में महिलाओं के मुद्दों का बेहतर प्रतिनिधित्व सुनिश्चित नही करता। जैसा कि वारविक विश्वविद्यालय में राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन की प्रोफेसर शीरीं एम राइ को उद्धृत करते हुए बासु लिखतीं हैं 'राजनैतिक दलों में नेतृत्वकारी भूमिका निभाने वाली महिलाओं ने महिलाओं के हितों और लैंगिक असमानता पर शायद ही ध्यान दिया है।'

महिलाएं और भूमि अधिकार

महिलाओं के भूमि और आवास संबंधी अधिकार भारतीय

महिला आंदोलनों की चिंता के केंद्र रहे हैं। हमेशा से महिलाओं ने देखभाल की अवैतनिक अर्थव्यवस्था संभाली है। उन्होंने खाना पकाने, साफ सफाई, परिवार की देखभाल करने, ईंधन चारा इक्कठा करने, पानी भरने, साग सब्जी उगाने, मुर्गीपालन, पशुपालन, खाद्य और पोषण की सुरक्षा मुहैय्या करने जैसी जिम्मेवारियां निभाई हैं। चूंकि अर्थव्यवस्था एवं वृहत्तर समाज में महिलाओं के योगदान की पहचान नही के बराबर है, और यह योगदान अवैतनिक या बहुत कम वेतन वाला है, यह ज्यादा जरूरी हो जाता है कि महिलाएं अपने लिए भूमि और संपत्ति का अधिकार सुनिश्चित कर पाएं (पटेल, 2002)।

जिस तरह महिलाओं के मानव अधिकार के मुद्दे हर मुद्दे के साथ जुड़े हैं, उनके भूमि और आवास के अधिकार भी अन्य समस्याओं से जुड़े हैं जिनमे शामिल हैं: भेदभावपूर्ण उत्तराधिकार प्रारूप, वसीयत द्वारा उत्तराधिकार से वंचित करना, कृषि और विकास के मुद्दे, वन–आधारित संसाधनों का उपयोग, जेंडर आधारित हिंसा, सामुदायिक और देशज भूमि का विनियोजन और निजीकरण, और आर्थिक संसाधनों और काम के अधिकारो पर जेंडर आधारित नियंत्रण (अग्रवाल, 1996)।

महिलाओं के मानवाधिकारों की अन्तर्निर्भरता समुचित आवास एवं भूमि अधिकार के दावेदारी की महिलाओं की क्षमता के महत्त्व को रेखांकित करती है ताकि भेदभाव, विभिन्न प्रकार की हिंसाओं, राजनैतिक भागीदारी से वंचित रखने, और अन्य आर्थिक अधिकारों के उल्लंघन के खतरे को कम कर सके (वेलायुधन, 2009)।

1980 के दशक में, बोधगया, बिहार की ग्रामीण महिलाओं ने छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के निर्देशन में शंकर पीठ के महंत (मुख्य पुजारी) के विरुद्ध एक वीरतापूर्ण लड़ाई छेड़ी जिन्होंने 12000 एकड़ जमीन हड़प ली थी। मठ (कुर्क जायदाद वाली) के साधू सामंतों की तरह व्यवहार करते थे और कई ऐयाश किस्म के साधू ग्रामीण कृषिकर्मी महिलाओं का दैहिक शोषण भी करते थे. उन्होंने ''जो उगाए उसकी जमीन'' और ''जो जोते, बोये, काटे, उसकी जमीन'' जैसे नारे लगाए। लोगों को लामबंद करने के साथ ही उन्होंने जनहित याचिका भी दायर की. लम्बे संघर्ष के बाद 1989 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसला सुनाया और मठ की जमीन को कृषिकर्मियों में बांटने का आदेश दिया. राज्य और जिले के प्रशासन ने मात्र पुरुषों से संपर्क किया। केवल कटोरा और कुशा–बीजा गाँव की कुछ महिलाओं को लगातार लामबंदी के बाद अपने नाम पर जमीन मिली। महिलाओं द्वारा भूमि के स्वामित्व प्राप्त करने से पत्नी प्रताड़ना, नशाखोरी और भूमि को गिरवी रखने और उसकी बिक्री में कमी आई। जहाँ कुशा में जमीन बेटियों को मिली, मस्तीपुर में बहुओं ने जमीन पाई।

इसी बीच, 1985 में महाराष्ट्र के धुले जिले की आदिवासी कृषिकर्मी महिलाओं, भूरीबाई और धागीबाई तथा पश्चिम बंगाल के सिंहभूम जिले के लारो जांको द्वारा दायर जनहित याचिकाओं ने, जिन्हे जमीनी स्तर पर चल रही मजबूत भूमि संघर्षों और महिला आंदोलनों का समर्थन प्राप्त था, भूमि अधिकारों के ज्वलंत मुद्दे की तरफ नीतिनिर्माताओं का ध्यान खींचा। किन्तु प्रशासन के जेंडर–संवेदी नहीं होने के कारण भूमि आवंटन, विरासत तय करने, और झगड़ों के निपटारे में अधिकारियों का महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह स्पष्ट रहे हैं. वे नहीं चाहते कि महिलाओं को भूमि और आवास के अधिकार मिलें। जहाँ तक महिलाओं के विकास का मामला है गैर सरकारी और सरकारी संगठन, दोनों ही भूमि, दूकान और आवास स्वामित्व के बजाय रोजगार सृजन पर ध्यान देते आये हैं।

1980 के दशक के दौरान जब नारीवादी कार्यकर्त्ता आवास अधिकारों के राष्ट्रीय अभियान, जो कि 'सब के लिए घर' के लिए लड़ने वाली कई संस्थाओं से मिल कर बनी है, में शामिल हुई तब वे संगठनकर्ता, अनुवादक और मातहत के रूप में स्वीकृत हुईं। किन्तु जैसे ही उन्होंने महिलाओं के लिए भूमि और आवास के अधिकारों की मांग शुरू की उनसे किनारा किया जाने लगा। अभियान से जुड़े लोगों के लिए एकमात्र अर्थपूर्ण श्रेणी 'गरीबों' की थी 'महिलाओं' की नहीं।

1990 से ग्रामीण महाराष्ट्र के अपने प्रभावक्षेत्र में शेतकारी संगठन ने सैकड़ों परिवारों को भूमि और आवास का पंजीकरण पति और पत्नी दोनों के नाम पर करवाने के लिए प्रोत्साहित किया है। 2006 में पुणे के एक गैर सरकारी संगठन मासूम (महिला सर्वांगीण उत्कर्ष मंडल) ने 2005 में पारित सरकारी प्रस्ताव के अनुसार संपत्ति के संयुक्त पंजीकरण के लिए अभियान की शुरुआत की। साल

भर के भीतर इसने पुणे जिले के पुरंदर ब्लाक के 80 गावों के 95% घरों की संपत्ति का संयुक्त पंजीकरण करवा दिया। 2012 में केरल के वायनाड जिले की एक आदिवासी महिला जनु ने अपने राज्य में लागू किये गए भूमि सुधारों के पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रहों को उजागर किया। गुजरात के महिला संगठनों ने महिलाओं के लिए भूमि अधिकार सुनिश्चित करने हेतु राज्य सरकार पर दबाव बनाने के लिए एक गठजोड़ बनाया। जैसे–जैसे भूमि के लिए संघर्ष गहन हुए, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार और झारखंड में महिला मुखिया वाले घरों से विच हंटिंग यानि महिलाओं पर चुड़ैल घोषित कर उनकी हत्या की वारदातों की खबरें आने लगीं। जमीन पर कब्जा करने का लालच इन घटनाओं के पीछे के मुख्य इरादे रहे।

आवास संबंधी अधिकारों के लिए महिलाओं के आंदोलन

जब महिलाओं ने संकटग्रस्त महिलाओं की सहायता करना आरम्भ कर दिया तो नौकरी की तलाश और बच्चों का नामांकन पहले से आसान हो गया। सबसे मुश्किल था उन महिलाओं के लिए रिहाईश का इंतजाम करना जो हिंसा की शिकार थीं, जिन्हें त्याग दिया गया था, मायके और ससुराल वालों ने जिनका बहिष्कार कर दिया या जिनके रिश्तेदारों ने जिन्हें धोका दिया था। महिलाओं के आवास संबंधी अधिकार उनके संपत्ति, भूमि और विरासत के अधिकारों से जुड़े हैं। आवास के प्राथमिक उपयोगकर्ता के रूप में उनके हित और उनकी जरूरतें सबसे ज्यादा हैं। उनके लिए घर सिर्फ एक आश्रय स्थल ही नही है, यह रोजगार, सामाजिक मेल मिलाप, बच्चों की देखभाल, सामाजिक अस्थिरता और लैंगिक हिंसा के समय शरण का स्थान भी है। इसके अलावा, आवास का मतलब चार दीवारें और एक छत ही नही, आवास संबंधी अधिकारों का तात्पर्य घर के साथ मिलने वाली आधारभूत सुविधाओं– पानी, बिजली, मैदान, सड़कें, मार्केट, स्कूल, स्वास्थ्य केंद्र, यातायात और रोजगार यानि सहयोगपूर्ण सामाजिक पर्यावरण तक पहुँच भी है।

महिला मुखिया वाले घरों की खास जरूरतें

भारत के शांतिपूर्ण क्षेत्रों में एक दहाई घरों की मुखिया तलाकशुदा, परित्यक्ताएं और एकाकी महिलाएं हैं जबकि संघर्ष के खतरे वाले क्षेत्रों में 30% से ज्यादा घरों की मुखिया महिलायें हैं। ऐसे घरों की महिलाएं मुख्य आर्थिक जिम्मेवारियां उठातीं हैं जिसमें घर की तलाश भी शामिल है। पैसे होने के बावजूद भी इन्हें किराये का घर ढूँढने में या मकान खरीदने में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। दुनिया भर में लगभग एक तिहाई घरों की मुखिया महिलाएं हैं। अफ्रीका और लातिनी अमेरिका के कुछ भागों में तो 45% घरों की मुखिया महिलायें हैं। पुरुष मुखिया वाले घरों की तुलना में महिला मुखिया वाले घर ज्यादा गरीब होते हैं।

मायके और ससुराल में महिलाओं के रहने के अधिकार

पिछले दो दशकों में कई महिलाओं ने पत्नियों के ससुराल में और बेटियों के मायके में रहने के अधिकार के लिए उच्च और सर्वोच्च न्यायालयों में याचिकाएं दायर की हैं। हिन्दू कोड के नवीनतम संशोधन तक, मिताक्षरा विधान के अनुसार पैतृक संपत्ति में सहदायिकी अधिकार केवल बेटों के ही थे क्योंकि वे कर्त्ता (अर्थात् संयुक्त परिवार और संपत्तियों के प्रबंधक) माने जाते थे। 1985 में एक युवा महिला लता मित्तल ने न्यायालय में अपने मायके में रहने के अधिकार से वंचित हिन्दू बेटियों पर लागू मिताक्षरा विधान को चुनौती देने वाली परमादेश (writ) याचिका दायर कर दी। साथ ही, PWDV अधिनियम, 2005 ने महिलाओं के अपने ससुराल और मायके में रहने के अधिकार को सुनिश्चित किया।

महिलाओं के आवास के अधिकार पर चल रहे विमर्श में दो मोर्चे बन गए हैं:

1. पुरुष स्वामित्व और नियंत्रण से परे महिलाओं के लिए आवास का अधिकारः क्योंकि महिलाओं की भूमि उपयोग प्राथमिकताएं पुरुषों से अलग हैं। एकल नारी शक्ति संगठन, जो राजस्थान और हिमाचल प्रदेश की एकल महिलाओं का संघ है, इस पक्ष के समर्थक हैं।
2. संयुक्त स्वत्वाधिकार : अधिकतर गरीब जनता एक ही घर बना पाती है। अतः महिलाओं के लिए अलग घर मुद्दा नही है। इसलिए भूसंपत्ति के संयुक्त पंजीकरण पर ध्यान दिया जाना चाहिए। पुणे में मासूम और नासिक में शेतकारी संगठन इसी पक्ष समर्थक हैं।

नारीवादियों का विकास एजेंडा

संयुक्त राष्ट्र ने 1975 को अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित कर दिया जिसमें समानता, विकास और शांति पर ध्यान केंद्रित किया गया। उत्तर–औपनिवेशिक राष्ट्रों के नारीवादियों के दबाव में संयुक्त राष्ट्र को विकास के संकेतकों को परिभाषित करना पड़ा। उत्तर औपनिवेशिक नारीवादियों ने नगरीकरण, उच्च शिक्षा, श्रम की गतिशीलता, तकनीकी विकास, आधुनिकीकरण, अधोसंरचना विकास, औद्योगिकीकरण, कृषि का मशीनीकरण, श्वेत क्रांति, हरित क्रांति, नीली क्रांति को केंद्र में रखने वाले विकास के संकेतकों को चुनौती दी।

1975 से यानि पिछले 32 वर्षों से विकास पर चल रहे संवाद के परिणास्वरूप निम्न मुद्दों को जेंडर के चश्मे से बौद्धिक पड़ताल की गयी:

- ट्रिकल डाउन सिद्धान्त की समीक्षा
- पार्श्वीकरणवाद (marginalization thesis) जिसे संयुक्त राष्ट्र ने विकास में महिला (विमेन इन डेवलपमेंट WID) के रूप में प्रचलित किया
- महिलाओं के एकीकरण का उपागम (इंटीग्रेशन ऑफ वीमेन एप्रोच) जिसे महिला और विकास (वीमेन एंड डेवलपमेंट WAD) के रूप में जाना गया
- नैरोबी सम्मलेन, 1985 का महिलाओं के साथ विकास के विकल्प (डेवलपमेंट अल्टरनेटिव्ज विथ वीमेन, DAWN)
- जेंडर और विकास (जेंडर एंड डेवलपमेंट GAD) निर्णय प्रक्रिया में महिलाएं, 1990
- मानव विकास सूचकांक और जेंडर सशक्तीकरण माप, 1995
- सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (Millennium Development Goals), 2000
- भारत सरकार की महिला सशक्तीकरण नीति, 2001
- नियोजन, नीतिनिर्माण और कार्यक्रम क्रियान्वयन में जेंडर मेनस्ट्रीमिंग

सभी राष्ट्रों द्वारा आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में महिलाओं के दोयम दर्जे की आधिकारिक स्वीकृति के साथ ही विकास की प्रक्रिया में महिलाओं के सम्बन्ध में दो उपागम प्रचलित हुए (रुस्तगी, 2004)। इसमें पहला था मानव संसाधन विकास के दर्शन से प्रभावित साधक–विषयक उपागम (इंस्ट्रुमेंटलिस्ट एप्रोच) जो महिलाओ के ऊपर निवेश किये जाने का पक्षधर था ताकि आर्थिक और सामाजिक हैसियत में सुधार के साथ उनकी निपुणता और उत्पादकता बढे। इसके उलट, दूसरा उपागम मानव विकास की अवधारणा से मार्गदर्शित था जो महिलाओ पर निवेश के उसी पहलू पर जोर देता था जिसका सम्बन्ध उनके जीवन की गुणवत्ता या कल्याण बढ़ाने से था। इस उपागम में शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और बेहतर गुणवत्ता वाले जीवन की प्राप्ति अपने आप में ही लक्ष्य है। दोनों उपागम आपस में जुड़े हैं (सेन, 1999)।

जेंडर और आर्थिक विकास की प्रक्रिया

निर्वहन अर्थव्यवस्थाओं का 'आधुनिक' बाजार अर्थव्यवस्था में समावेश ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में अन्यायपूर्ण व्यवस्था को बनाये रखने की वजह से पारंपरिक जेंडर आधारित श्रम विभाजन पर सवाल उठाये है। महिलाएं सबसे कम कौशल वाले कार्य करती हैं और उन्हें या कम वेतन मिलता है या फिर उनसे उम्मीद की जाती है कि वे परिवार की उत्तरजीविता संबंधी जरूरतो में बिना किसी लाभ के योगदान करेगी। ईस्टर बोसेरप (1970) अपने अग्रगामी शोधअध्ययन द्वारा खाद्यसुरक्षा में अफ्रीकी महिलाओं के अतिमहत्वपूर्ण योगदान को सामने लेकर आईं और अफ्रीका में बहुविवाह प्रथा के राजनैतिक अर्थतंत्र को समझाया जिसके वजह से उस निर्वहन अर्थव्यवस्था में खेती बाड़ी के लिए जहाँ पशु संसाधन और मशीनीकरण बहुत कम है, महिलाओं और बच्चों के अवैतनिक और हाड़तोड़ श्रम के द्वारा अर्जित आर्थिक संसाधनों को पुरुष इकट्ठा करने और केंद्रीकृत करने में सफल हुए।

नारीवाद की तीसरी लहर

नारीवाद की वर्तमान अवस्था को तीसरी लहर का नारीवाद माना जाता है जिसकी विचारधारा संबंधी जड़ें जेंडर और लैंगिकता की उत्तर संरचनावादी (post structuralist) व्याख्या से जुड़ी हैं। वे पुरुष–स्त्री के द्वैत की आलोचना करते हैं जिसे वे प्रभावी समूहों की सत्ता को बनाये रखने के लिए निर्मित कृत्रिम अवधारणाएं मानते हैं। तीसरी लहर के

नारीवाद के प्रस्तावक यह दावा करते हैं कि उनका नारीवाद महिलाओं को अपनी पहचान शामिल करके नारीवाद क्या है और क्या हो सकता है, के मान्यता तंत्र को शामिल करते हैं अपने परिप्रेक्ष्य से नारीवाद को परिभाषित करने देता है।

तीसरी लहर के नारीवाद में दरअसल उनके दृष्टिकोण शामिल हैं जो पिछली लहरों में शामिल नही थे या हाशिये पर थे। ये हैं–दलित महिलाएं, आदिवासी महिलाएं और अश्वेत महिलाएं, उत्तर औपनिवेशिक राष्ट्रों की महिलाओं, दिव्यांग महिलाएं, नस्ली व धार्मिक अल्पसंख्यक महिलाएं और वैकल्पिक लैंगिकता वाली महिलाएं। इस लहर ने असंतोष के विमर्श को गहन किया है। यह तीसरी लहर दूसरी लहर के फायदों को स्वीकारती करती है और दक्षिणी विश्व के युवा नारिवादियो को दुनिया देखने का नजरिया देती हैं।

नव उदारवादी आर्थिक नीतियों की समीक्षा

यद्यपि भारत के सामाजिक ताने–बाने की विविधता ने ऐतिहासिक रूप से निरंतरता और विवाद दोनों देखे हैं, विभिन्न सामाजिक तबकों के सम्बन्ध सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं द्वारा ज्यादा तय किये जाने लगे हैं जहाँ बाजारीकृत अर्थव्यवस्था की जरूरतें और उसके सिद्धान्त ही प्रचलित हैं। 1990 के दशक से यह ज्यादा स्पष्टता से दिखाई पड़ रहा है। यद्यपि आजादी के बाद के वर्षों में संविधान में दिए गए मार्गदर्शक सिद्धान्तों के जीवित रखने के उद्देश्य से विभिन्न क्षेत्रों में इन अधिकारों को सुनिश्चित करने के प्रभावी प्रयत्न किये गए, वर्तमान नीतिगत ढांचा और विकास के प्रतिमानों ने इन प्रयासों के लिए कठिन चुनौतियां पैदा कर दी है।

पर्यावरणीय नीतियों और जीविका से जुड़े सरोकारों पर हुई कार्यवाही की समीक्षा

जेंडर और विकास का अर्थशास्त्र प्राकृतिक जगत के शोषण और अधोगति एवं महिलाओं की परतंत्रता और उनके उत्पीड़न में एक रिश्ता देखता है। पर्यावरणीय नारीवाद (इकॉफेमिनिस्म) का उदय 1970 के दशक के मध्य में नारीवाद के दूसरे लहर और हरित आंदोलन के साथ हुआ। यह नारीवाद एवं हरित आन्दोलनों के तत्वों को एक करता है, हालांकि यह दोनों को चुनौतियां भी देता है। यह हरित आंदोलन से मानवीय गतिविधियों के प्राकृतिक जगत पर पड़ने वाले प्रभावों से जुड़े सरोकार लेता है और नारीवाद से मानवता के उस दृष्टिकोण को ग्रहण करता है जो महिलाओं को परतंत्र बनाने, उनके शोषण एवं उत्पीड़न के तरीकों में जेंडरीकृत है। यह एक सक्रियतावादी और अकादमिक आंदोलन दोनों है जो प्रकृति के ऊपर प्रभुत्व और महिलाओं के शोषण में महत्वपूर्ण सम्बन्ध देखता है। 1980 – 1990 के दशकों में पर्यावरणीय नारीवाद से वो महिलाएं जुड़ी जो परमाणु अस्त्रों के विरोध आंदोलनों, पर्यावरण संबंधी आन्दोलनों और महिला आन्दोलनों से सम्बद्ध थीं (शिवा, 1988)।

महिलाओं की आजीविका से जुड़े सरोकारों, जैसे ईंधन, चारा, पानी, पशुओं की देखभाल, खेती बाड़ी, रसोई उद्यान, खाद्य सुरक्षा और खाद्य संप्रभुता, को नारीवादियों ने न केवल नीति के स्तरों पर उठाया है बल्कि उन्होंने महिलाओं को लामबंद किया है, ग्रामीण और आदिवासी महिलाओं के समूहों को शामिल कर के सफल मॉडल विकसित किये हैं। उदाहरण के लिए, उत्तराखंड में नवधान्य, बंगलोर में अन्नदान, मृदा एवं बीज बचाओ नेटवर्क और हैदराबाद के पास के महिला किसानों को संगठित करने के आशा काचरू के प्रयत्न। पर्यावरणीय नारीवादी कहते हैं ''अब और इंतजार नहीं....'', ''हम आपातकाल की स्थिति में हैं और इस बारे में अभी कुछ किया जाना जरूरी है.... दुनिया भर में अर्थव्यवस्थाओं, संस्कृतियों और प्राकृतिक संसाधनों की लूट मची है ताकि विश्व जनसंख्या का 20% (सुविधाप्राप्त उत्तर अमरीकी और यूरोपीय) प्रगति के नाम पर इसके 80% संसाधनों का उपयोग करते रहें'' (माईल्स और शिवा, 1993)।

वे आगे कहतीं हैं, ''हमारा उद्देश्य है इस संकुचित परिप्रेक्ष्य से परे जाएँ, अपने विविधता को अभिव्यक्त करें और अलग अलग तरीकों से वैश्विक व्यवस्था में अन्तर्निहित उन असमानताओं से निपटें जिनकी वजह से उत्तर के देश दक्षिण के देशों पर, पुरुष महिलाओं पर और असमान वितरण वाले आर्थिक लाभ के लिए और अधिक प्राकृतिक संसाधनों की उद्दण्ड लूट प्रकृति पर हावी हो रहे हैं।... सभी जगहों पर पर्यावरणीय विनाश के खिलाफ सबसे पहली आवाज महिलाओं ने उठाई। यह हमें, अर्थात पारिस्थितिकीय आन्दोलनों में सक्रिय कार्यकर्ताओं को, स्पष्ट हो गया कि विज्ञान और तकनीक जेंडर–निष्पक्ष नहीं है। कई दूसरी महिलाओं की तरह हमने भी प्रकृति पर

मनुष्य के शोषणकारी प्रभुत्व (जिसे 16वीं सदी से न्यूनकारी आधुनिक विज्ञान द्वारा रचा जा रहा था) और अधिकतर पितृसत्तात्मक समाजों में, यहाँ तक कि आधुनिक औद्योगिक समाजों में भी, प्रचलित स्त्री–पुरुष के बीच के शोषणकारी और दमनकारी संबंधों के बीच रिश्ता देखना शुरू कर दिया है)।'' (माइल्स और शिवा, 1993)।

कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न

कार्यस्थल पर लैंगिक उत्पीड़न 1980 के दशक से ही महिला आंदोलन के मुख्य सरोकारों में से एक रहा है। 30 वर्षों के सतत प्रयासों के बाद कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिक उत्पीड़न (बचाव, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 महिलाओं को मिला। अभी नियमों की प्रतीक्षा की जा रही है ताकि इन अधिनियम के प्रावधानों को लागू किया जा सके।

1990 के दशक के दौरान कार्यस्थल पर सामूहिक बलात्कार का सबसे क्रूर और विवादस्पद मामला तब आया जब राजस्थान राज्य में राजस्थान सरकार महिला विकास कार्यक्रम की एक कर्मचारी ने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए बाल विवाह को रोकने की कोशिश की। सामन्ती पितृसत्तावादियों ने उस महिला (जो, उनके शब्दों में 'गरीब कुम्हार समुदाय की नीच' महिला थी) की हिम्मत से क्रोधित होकर उसे सबक सिखाना चाहा और लोगों के सामने कई बार उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया। राजस्थान उच्च न्यायालय में अत्यंत अपमानजनक कानूनी लड़ाई के बाद भी बलात्कार पीड़िता को न्याय नहीं मिला और बलात्कारी, जो शिक्षित और सवर्ण जाति के संपन्न पुरुष थे, को मुक्त कर दिया गया। इस फैसले से कुपित महिलाओं के अधिकारों के लिए काम करने वाले समूह विशाखा ने सर्वोच्च न्यायालय में जनहित याचिका दायर कर दी (कॉम्बैट लॉ, 2003)।

1997 में शीर्ष न्यायालय ने विशाखा मामले में ऐतिहासिक फैसला दिया, जिसमे भंवरी देवी के बलात्कारियों को सजा हुई और लैंगिक उत्पीड़न संबंधी शिकायतों से निपटने के लिए संस्थाओं को दिशानिर्देश भी जारी किये गए। न्यायालय ने कहा कि जबतक मामले से निपटने के लिए कानून नही आता तब तक ये दिशा निर्देश लागू रहेंगे। इस दिशा निर्देश के पीछे अनेकों नारीवादी गैरसरकारी संगठन और महिला समूह थे जो तब एकत्र हुए जब भंवरी देवी के साथ उस समय बलात्कार हुआ जब वो वो सरकार द्वारा स्वीकृत काम को अंजाम दे रहीं थीं। इन दिशानिर्देशों के बनने के बाद के वर्षों में कई विश्वविद्यालयों, कुछ गैर सरकारी संगठनों और निजी क्षेत्र के नियोक्ताओं ने लैंगिक उत्पीड़न संबंधी नियमावलियां बनाई जिन्हें बड़े ध्यानपूर्वक तैयार किया गया था।

गैर सरकारी संगठनो और निजी क्षेत्र में नियोक्ताओं द्वारा नियमावलियां के चरित्र विषम थे जो इस पर निर्भर करता था कि संस्थान में लैंगिक उत्पीड़न पर दृष्टिकोण रखने वाले नारीवादी हैं या नहीं। जहाँ ऐसे दृष्टिकोण का अभाव है वहाँ समितियां और नीतियाँ कर्मचारियों को अनुशासित रखने के लिए नियोक्ता द्वारा निर्धारित एक और प्रक्रिया बन कर रह गयीं, क्योंकि ऐसे अधिकतर मामलों में ट्रेड यूनियन नहीं है।

विश्विद्यालय की नीतियां (उदाहरण के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, और उत्तर पूर्व हिल विश्वविद्यालय, शिलांग में) के विश्वविद्यालयी समुदाय में प्रचलित जनतांत्रिक राजनीति से निकलने की प्रवृत्ति रही है। एक समुचित नियमावली बनाने और उसे लागू करने की व्यवस्था बनवाने पर केंद्रित विश्वविद्यालय परिसर के प्रगतिशील राजनैतिक समूहों और वैयक्तिक शिक्षकों और छात्रों की ऊर्जा को सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों ने उत्प्रेरक का कार्य किया। एक शैक्षणिक वातावरण में लैंगिक उत्पीड़न की परिभाषा अन्य प्रकार के कार्यस्थलों से अलग होनी ही थी।

शिक्षित महिलाओं की सामाजिक भूमिका में सुधार किन्तु ग्लास सीलिंग बनी हुई है

मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय महिलाओं के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी हुई है। पारंपरिक रूप से पुरुषों के गढ़ रहे क्षेत्रों में महिलाएं प्रवेश कर रही हैं। सत्ता–व्यवस्था के उच्च सोपानों पर और डॉक्टर, वकील, चार्टर्ड अकाउंटेंट, आर्किटेक्ट, इंजीनियर और वैज्ञानिक जैसे पेशों में भारी व्यावसायिक विविधीकरण हुआ है। राज्य और राज्येतर कर्ताओं में महिलाओं के हक के बारे में सामान्य जागरूकता बढ़ी है। उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएं प्रशासन, न्यायपालिका, कॉर्पोरेट जगत, राजनीति और शिक्षण संस्थाओं में सत्ता–व्यवस्था के उच्च सोपानों तक पहुँच रहीं हैं। भारतीय महिलाओं की सांख्यिकीय प्रोफाइल

शिक्षा, रोजगार, राजनैतिक भागीदारी, आपराधिक न्याय व्यवस्था में और निर्णयकारी निकायो में महिलाओं की उपलब्धियों का वार्षिक ब्यौरा प्रस्तुत करता है। इसने भारतीय पुरुष के मन में एक जबरदस्त व्यग्रता उत्पन्न की है जो रोजमर्रा के जीवन में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और स्त्री–द्वेष के रूप में अभिव्यक्त होती हैं।

प्रभावशाली व्यक्तित्व और संस्थाएं

महिलाओं के सरोकारों को प्रोत्साहित करने वाले मुख्य कर्ता हैं–महिला अधिकार समूह, सिविल सोसाइटी संस्थाएं, स्वतंत्र शोधकर्ता और देशभर के महिला अध्ययन विभाग और अकादमिक जगत के अन्य लोग। साथ ही वर्ग, जाति, धर्म और नस्ल पर आधारित मजबूत पूर्वाग्रह हैं जो समाज के ऐतिहासिक रूप से उपेक्षित और वंचित तबकों की महिलाओं को हाशिये पर धकेलते हैं। बहिष्करण का प्रतिरूप सामाजिक और आर्थिक असमानताओं, भेदभाव और पार्श्वीकरण के लंबे इतिहास से पोषण प्राप्त करता है। आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती अतिसंवेदनशीलता और विभिन्न समुदायों और नस्लों के अधिकार को लेकर बढ़ते तनाव के साथ ही जाति और वर्ग के पदानुक्रम पर आधारित असमानताओं की खाई और गहरी हो गयी है। इसी से नागरिकता से जुड़े अधिकारों को संचित करने की लोगों की योग्यता भी तय होती है। विकास की विषम एवं असमान प्रकृति और शासन के लिए अपनाये गए तरीकों में संघीय लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों के लिए आदर के अभाव को ध्यान में रखते हुए, इन अधिकारों पर बातचीत को समस्यात्मक समझा जा रहा है।

आगामी चुनौतियाँ

समकालीन भारतीय समाज में महिलाएं जिन चुनौतियों का सामना कर रही हैं उनकी सूची बहुत लम्बी है। एक ऐसे देश में जो मजहबों, भाषाओँ, और जीवन शैलियों की विविधता को आगे ले जाने का वचन देता है वहां "सही" आचरण को परिभाषित करने में और अधिक आक्रामकता देखी जा रही है जो महिलाओं के संदर्भ में विशिष्ट लक्षण प्राप्त कर लेती है। राष्ट्र, राष्ट्रीयता और भारतीय स्त्रीत्व की एक समांगी अवधारणा प्रस्तुत करने के प्रयत्न चल रहे हैं। जबकि राजनैतिक निकाय, जो नैतिक अभिव्यंजना वाले कर्कश दावों के सक्रिय प्रचार में लगे हैं, मीडिया और बाजार भी इन्हें परिभाषित करने में अपना योगदान दे रहे हैं। इस तरह की समांगीकृत करने वाली 'मुख्यधारा' की अभिव्यक्तियाँ बहुलतावादी विमर्शों को पार्श्वीकृत करना और अवैध ठहराना चाहती हैं और इस प्रकार सांस्कृतिक और राजनैतिक, दोनों ही क्षेत्रों में बहिष्करणों और अस्वीकरणों को बढाती हैं। प्रत्येक धर्म, प्रत्येक समुदाय और प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के बहिष्करण और पार्श्वीकरण का प्रारूप एक जैसा है जिससे व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों स्तरों पर उन्हें चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

इन सरोकारों को राज्य, राज्य की नीतियों और राज्य और उसके नागरिकों के बीच के बदलते रिश्तों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। पिछले कुछ दशकों में निजी क्षेत्र के पक्ष में सार्वजनिक क्षेत्र से राज्य का धीरे धीरे पीछे हटना भी जन कल्याण की मूलभूत सरोकारों से प्रस्थान की ओर इशारा करता है। वित्तीय घाटे को कम करने के नाम पर सामाजिक और सार्वजनिक हितों में निवेश की कमी ने शैक्षिक संस्थानों और नागरिकों के अपने अधिकार प्राप्त करने की क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। वैश्विक प्रतिबद्धताओं से पीछे हट जाने के साथ ही सरकारी अनुदान और समर्थन से हाथ खींच लिए जाने की वजह से गरीबों, खासकर महिलाओं का बोझ और बढ़ गया है। न्यायपालिका के चरित्र में भी बदलाव आये है, जहाँ जेंडर पूर्वाग्रह प्रचलित हैं। सैनिक और अर्धसैनिक बलों का नागरिकों और जन आन्दोलनों के विरुद्ध बढ़ते प्रयोग ने लोकतान्त्रिक लक्ष्यों की प्राप्ति की राह में तीखे टकराव पैदा कर दिए हैं।

हाल के वर्षों में जैसे–जैसे महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर हो रही चर्चा की दृश्यता बढ़ती जा रही है, वैसे वैसे यह समझ में आने लगा है कि यह हिंसा बढ़ती असमानताओं, सामाजिक पदक्रमों और जेंडर आधारित पूर्वाग्रहों के सन्दर्भ में हो रही है और इन्हीं में सन्निहित है। साथ ही, इसके प्रमाण हैं कि 'नई' आर्थिक नीति की शुरुआत और अखंड बाजार–चालित विकास के मॉडल के थोपे जाने के बाद जनसाधारण की भलाई और उनके लिए जीवन की गुणवत्ता सुनिश्चित करने की चुनौती बढ़ गयी है। यह विकास के विभिन्न सूचकांको से स्पष्ट है। जेंडर अंतराल बढ गए हैं, और सामाजिक असमानताएं कई अर्थों में गहरी हुई है, जिसमें वो असमानताएं भी शामिल हैं जो ऐतिहासिक रूप से निर्धारित बहिष्करणों पर आधारित हैं। ये असमानताएं अंतर्क्षेत्रीय और अन्तःक्षेत्रीय विभाजनों, जाति और समुदाय आधारित विभेदों तथा भूमि, आवास, भोजन और जल जैसे संसाधनों तक पहुँच और उन पर स्वामित्व की असमानताओं में दिखती है। जेंडर आधारित पदक्रमों के लिए यह खासकर ज्यादा सही है, उदाहरण के लिए, श्रम, मजदूरी की असमानताएं, ग्रामीण–उपनगरीय–नगरीय आजीविका और रोजगार के प्रारूप तथा गरीबी के स्त्रीकरण के सन्दर्भ में। जाति, जनजाति और समुदाय आधारित असमानताएं बनी हुई हैं, विकलांगता से जुड़े मुद्दों और अमानकीय लैंगिक रुझानों की अभिव्यक्ति के प्रति भेदभावपूर्ण रवैय्या बना हुआ है। कुल मिला–जुला कर मानवीय और मानवोचित जीवन पाने के रास्ते में जो संरचनात्मक बाधाएं हैं वो और सख्त हो गयी हैं।

2012 से विशेष कर जेंडर आधारित हिंसा, खासकर लैंगिक हिंसा के सन्दर्भ, रूपों और पैमाने पर राष्ट्रव्यापी विरोध और गहन चर्चा चल रही है। यह विमर्श, जो कि नूतन इतिहास का सबसे गहन और व्यापक विमर्श रहा है, ने बिल्कुल अलग–अलग व्यावसायिक वर्गों, आंदोलनों और संगठनों को सम्मिलित किया और विभिन्न क्षेत्रों, वर्गों, और समुदायों में हो रही हिंसा को समाप्त करने का प्रयास किया। ये सारी बातें इस तथ्य की ओर इशारा करती है की वर्तमान परिदृश्य में महिलाएं स्पष्ट रूप से आक्रमण के ठीक सामने हैं।

पिछले कई दशकों में महिला आंदोलन अपने कई स्थानों से इन मुद्दों पर चल रहे विमर्शों से जुड़ा है। यह भूमंडलीकरण के प्रभावों का अध्ययन करते हुए नीति

निर्धारण की प्रक्रिया से इस तर्क के साथ गंभीर रूप से जुड़ा है कि नीति की विषय वस्तु के साथ नीति–निर्माण प्रक्रिया का भी लोकतंत्रीकरण आवश्यक है। जबकि कई संघर्षों ने एक ऐसे समाज और राजनैतिक व्यवस्था की कल्पना की है जहाँ अर्थपूर्ण नागरिकता हो, वहीँ नारीवादी जमीनी अनुभवो को नई दृष्टि से देख रहे है, कई पुराने प्रश्नो पर पुनर्विचार कर रहे है और आनेवाली चुनौतियों का सामना करने के लिए नए गठजोड़ तलाश रहे हैं।

आज के नवीन संघर्षों में महिलाएं मुख्य प्रतिभागी हैं। वे पितृसत्ताओं के नए मानकों को चुनौती दे रही हैं, व्यापक गठजोड़ और विकल्प निर्माण के लिए प्रयत्नशील हैं। ऐसा नहीं कि महिलाओं का सामना और टकराव सिर्फ राज्य से है। वे घर में, जाति में, धार्मिक और नस्ली समूहों में, व्यावसायिक संस्थाओं के भीतर, क्षेत्रीय संघर्षों और अन्य ठिकानों पर टकराव में शामिल हैं। एक समूह के रूप में इनका टकराव अंदरूनी और बाहर की, दोनों शक्तियों से जारी हैं। वे परिवार में, जाति और संप्रदाय के झगड़ों में, और शासकीय दमन की स्थितियों में लैंगिक हिंसा का निशाना बन रही हैं। कभी–कभी सामाजिक परिवर्तन और अतिवादी राजनैतिक आंदोलन पारंपरिक जेंडर भूमिकाओं और मानकों को चुनौती देने के ठिकाने उपलब्ध कराते हैं, हांलाकि साथ ही साथ पार्श्वीकरण के नए रूप भी उत्पन्न हो रहे हैं। संवैधानिक वादों को पूरा करने की उन्नतिकारी भूमिका के बजाय राज्य अपनी दमनकारी, निचोड़ने वाली और कब्जा करने वाले की भूमिकाओं के द्वारा पार्श्वीकरण की वर्त्तमान प्रक्रियाओं से अपनी मिलीभगत बढ़ाता जा रहा है (चक्रवर्ती, 2003)। यह राज्य की उस समझ पर आधारित है कि महिलाओं के आन्दोलनों द्वारा कानून की शरण में जाना उसकी दमनकारी भूमिका को पहचाने जाने से है, किन्तु इसके परे, कानून संभावित सुधार का भी ठिकाना है। अधिकारों की भाषा, क्षतिपूरक विधिशास्त्र और वैधानिक प्रमाणीकरण के द्वारा कानून ने पार्श्वीकृतो और वंचितों के लिए नए द्वार खोले हैं। साथ हीं, कानून ने निहित स्वार्थों को संरक्षण, प्रथागत न्याय के वर्चस्व और अन्य प्रतिक्रियावादी प्रक्रियाओं जैसे मुद्दों पर सतर्कता के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया है (दित्रिच, 1992)। आजीविका के वृहत्तर क्षेत्र में महिलाओं की श्रम व्यवस्था को राज्य, बाजार और परिवार मिलकर तय करते हैं। अभी हाल में ही, बाजार का पुनर्गठन हुआ है और तकनीकी क्षेत्र में परिवर्तन हुए हैं जिससे श्रम का पार्श्वीकरण हुआ है और इस प्रकिया का असर महिलाओं पर ज्यादा हुआ है (एलसन और पीयरसन, 1997)।

इसका एक परिणाम यह हुआ कि प्रवास करने वालों में महिलाओं की संख्या बढ़ती जा रही है। इसका एक और असर यह हुआ कि भूमि, जल, श्रम, विवाह, शिक्षा और स्वास्थ्य के बाजार आपस में गुंथ गए हैं जिससे जेंडर की असमानता न केवल बनी हुई है बल्कि और बढ़ गयी है। दूसरी तरफ, महिला कामगारों ने सामूहिकीकरण और समझौतों की रणनीतियाँ में हुए नवाचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिसने अनुबंध की विचारधाराओं और सहमति की वैधता को नए अर्थ दिए हैं।

नारीवादी विमर्श ने एक सांस्कृतिक रचना एवं अनुशासन के स्थान के रूप में शरीर के महत्त्व को समझना शुरू कर दिया है। सत्ता की जटिल परस्पर–क्रियाएँ शरीर को रचती हैं वे जो भूखे हैं, अपंग हैं, अस्वस्थ हैं, मोटे समझे जाते हैं, या जिनको तकनीक ने बदल दिया है–प्रकृतिकरण के प्रभावी अलंकारिक शब्दावली को चुनौती देते रहे हैं। शरीर जेंडर के प्रश्नों के केंद्र में भी है। लोगों, स्थानों, और विचारधाराओं के साथ महिलाओं के सम्बन्ध लगातार बनते, बदलते, फिर से बनते और बने रहते हैं जिसकी वजह से उनके अपने शरीर से सबंध बढ़ रहे हैं।

सबसे दमदार चुनौतियां उन महिलाओं द्वारा पेश की जा रही हैं जो विषमलिंगीमानकों वाले परिवार, पारंपरिक दाम्पत्य और पितृवंशीय विरासत के हाशिए पर खड़ी हैं। राष्ट्रीयता आंदोलनों ने, विशेषकर उत्तर पूर्व और जम्मू कश्मीर में, राष्ट्र–राज्य के विचार में प्रतिबिम्बित सांस्कृतिक और क्षेत्रीय आधिपत्य को शब्द दिए हैं और उन पर सवाल उठाये हैं। महिलाओं और उनके मुद्दों का गलत चित्रण और पार्श्वीकरण तथा भारतीय संस्कृति के इस आधिपत्य वाले चित्रण में तालमेल दिखता है।

प्रभुत्व स्थापित करने वाले औजार के रूप में भाषा के महत्त्व को समझना नारीवादी परियोजना के केंद्र में रहा है जिसकी उत्पत्ति अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय दोनों स्रोतों से हुई है। हाशिये से उठने वाली विविध आवाजें–जिसमे शामिल हैं क्वीयर, संकेत भाषा द्वारा सबल बनाये गए लोग, दलित, आदिवासी और मुसलमान–अनुवाद के अभाव के कारण न तो मुख्यधारा के साथ और न ही एक दूसरे

के साथ बातचीत कर पा रहीं हैं। हालांकि हाशिये पर स्थित संस्कृतियों को बनाये रखने और फिर से जीवित करने के लिए तथा नई समानतावादी संस्कृतियों के विकास के लिए प्रतिरोध के कई ठिकाने हैं।

नए सामाजिक आंदोलन, जैसे दलित आंदोलन, प्रतिरोध के द्वारा अपने सांस्कृतिक अधिकारों को जताते हैं, सत्ता की प्रभावी कथा का वितर्क प्रस्तुत करते हैं और भिन्नता, बहुलता, संघर्ष और समझौतों के घटनास्थल के रूप में संस्कृति की समझ बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। चित्रों, गीतों, फिल्मों, वृत्तचित्रों, कविताओं और आत्मकथाओं जैसे माध्यमों से प्रतिरोध को अभिव्यक्त कर महिला आंदोलन ने भी इन प्रक्रियाओं में अपना योगदान दिया है। अभी एक ऐसी स्थिति है जिसमें दो विपरीत जुड़ रहे हैं, जिसमे एक तरफ तो बहुत बड़े वर्ग का लगातार बहिष्करण हो रहा है, चंद लोगों के विशेषाधिकार बढ़ रहे हैं और वहीं दूसरी ओर नए संपर्कों और संवादों की अत्यंत वास्तविक सम्भावना भी दिखाई पड़ती है।

हमारे देश में बड़ी कंपनियों द्वारा जमीन हड़पने और खनन लॉबी के विरुद्ध जमीनी स्तर पर चलाये जा रहे जन आंदोलनों और वनवासी समुदायों से भी महिला नेत्रियां हैं, जैसे झारखण्ड से दयामणि बरला और राजस्थान से केली और सरमी बाई, जो राजनैतिक स्तर पर सामूहिक संसाधनों पर दावा ठोकने की भूमिकाएं निभा रही हैं और आंदोलनों का नेतृत्व भी कर रही हैं। जमीनी स्तर पर सक्रिय महिलाओं, जैसे भूमि के सन्दर्भ में, का ये कहना है कि भूमि और अन्य संसाधन के दस्तावेज ही खतरे में नही है, वह जीवन शैली खतरे में है जो आत्मनिर्भर है और जो प्रत्येक व्यक्ति को स्वायत्तता एवं प्रतिष्ठा देती है। आदिवासी आंदोलन की महिलाओं ने न केवल संयुक्त स्वत्वाधिकार की मांग की बल्कि उन्होंने इसकी भी मांग की कि संसाधनों पर आधिपत्य सभी महिलाओं, जिसमे अनब्याही बेटियां भी शामिल है, का हो क्योंकि उन्हें भी इज्जत से जीने का अधिकार है। यह केवल भौतिक लाभों के लिए अवसर उपलब्ध करवाने और उन अवसरों को बनाये रखने की ही बात नही है, यह साझी अर्थव्यवस्था में आजीविका सृजन के बारे में है।

कुछ उग्र, स्वतंत्र और आक्रामक महिला कार्यकर्ता भी हैं, जैसे मेधा पाटकर, जो पारिस्थितिकीय दृष्टि से गैर टिकाऊ और अन्यायपूर्ण पूंजीवादी विकास के विरुद्ध अपने संघर्ष की राजनीति के साथ है। इरोम शर्मिला हैं, जिन्हें पिछले 11 सालों से सरकार द्वारा जबरन खिलाया जा रहा है और कैद में रखा गया है क्योंकि वो आर्म्ड फोर्सेज (स्पेशल पावर्स) एक्ट, (AFSPA) के खात्मे की मांग के लिए लगातार अनशन कर रही हैं। यह कानून उनके राज्य मणिपुर, और उत्तर पूर्वी राज्यों के साथ अधिकृत क्षेत्र जैसा बर्ताव की अनुमति देता है। नलिनी नायक हैं जो मछुआरों के आंदोलन से जुड़ी हैं और उनकी आजीविका और पारिस्थितिकीय निरंतरता के लिए कार्यरत हैं।

पारिस्थितिकीय आंदोलन, 'हमारे नारीवाद का संसाधन आधार'

पूरे उत्तर पूर्वी भारत में राजनैतिक रूप से सचेत और सशक्त महिलाओं की बढ़ती हुई जमात है जिन्होंने उस खालीपन को भरा है जिसे भरने में सरकारें, संघर्षरत उग्रवादी संगठन और विद्रोही संगठन असफल रहे। मणिपुर की मेऐरा पैबिस, नागालैंड की नागा मदर्स एसोसिएशन (NMA) और असम में नारी अधिकार समिति (NAS) एवं असोम महिला सचेतन मंच और इस तरह की अन्य संस्थाएं पीड़ित महिलाओं और समुदाय के अतिसंवेदनशील वर्गों तक पहुँचने के लिए प्रयासरत है ताकि उनके द्वारा झेले जा रहे जीवन और स्वतंत्रता के बढ़ते खतरों पर विराम लगाया जा सके और किसी प्रकार की व्यवस्था बनाई जा सके। इनके अधिकतर सदस्यों ने संघर्ष में शामिल होने की वजह से या संघर्ष का शिकार होने की वजह से अकथनीय पीड़ा का अनुभव किया है।

सक्रिय कार्यकर्ताओं के समूहों, जैसे NMA और NASS, की सहभागी ''राजनीति'' मानक स्त्री व्यवहार एवं आक्रामक प्रतिरोध की रेखा के दोनों तरफ हैं। इसका एक अनूठा और चकित कर देने वाला प्रदर्शन तब हुआ जब मणिपुर की राजधानी इम्फाल की सडकों पर 2004 में मनोरमा हत्या मामले के बाद, एक बैनर, जिस पर अब अत्यंत प्रसिद्ध बन चुका नारा लिखा था–'भारतीय सेना, हमारा बलात्कार करो'–को मीरा पैबिस द्वारा निर्वस्त्र शरीर पर लपेट कर विरोध प्रदर्शन किया गया। इस घटना ने उत्तर पूर्व के सैन्यीकृत समाजों की तरफ तुरंत ध्यान खींचा। इस पल ने एक ऐसी प्रतीकात्मकता ग्रहण कर ली है जिसे महिलाओं की कर्मठता और उनकी राजनैतिक जागरूकता से शक्ति मिलती है (आई.डब्ल्यू.ए.एस., 2014)। लेकिन इस

से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है इन्ही समाजों की महिलाओं की भागीदारी जो बढ़ती ही जा रही है। इन्होंने सक्रिय समझौतों द्वारा शांति स्थापना के लिए राज्य में और राज्य के बाहर स्वतः स्फूर्त सक्रियता दिखाते हुए कई पहल किये हैं। ये महिलाएं हिंसा के खिलाफ और संघर्ष समाप्ति एवं शांति स्थापना के पक्ष में और परिवार में अंतहीन मुकदमों में फंसे साधारण महिलाओं तक पहुँचने के लिए लगातार जोर शोर से लिखती रही हैं और इन से जुड़े मुद्दों को कई मंचों से उठाती रही हैं।

नारीवाद और अक्षम/विकलांग महिलाएं

अपनी विकलांगता और सामजिक–सांस्कृतिक पहचानों, जो जाति, वर्ग और आवास की स्थिति जैसे लक्षणों के आधार पर बंटी हुई हैं, के आधार पर विकलांग महिलायें भारतीय समाज में विविध और पार्श्वीकृत स्थान रखती हैं। इस प्रकार विकलांग महिलाओं के एक से अधिक पहचान चिन्ह हो सकते हैं जिससे उनके दिन–प्रतिदिन के अनुभव बहुत पेचीदे और मुश्किल हो जाते हैं।

एक ऐसी संस्कृति जिसमें परिवार द्वारा तय की गई शादियों का ही रिवाज है, विकलांग महिलाओं की स्थिति विकट हो जाती है। भले ही यह मुश्किल है, किन्तु 'सामान्य' महिलाओं के लिए यह संभव है कि वे इस सांस्कृतिक व्यवस्था का प्रतिरोध कर सकें, जबकि विकलांग महिला द्वारा इसका सामना किया जाना दुष्कर कार्य है। धनी और मध्यवर्ग की विकलांग लड़कियां शायद परिवार द्वारा तय की गयी शादियों में निहित मुश्किलों से निपट ले, भले ही इसके लिए उन्हें कई समझौते करने पड़े। विकलांग बेटों की शादी की सम्भावना बनी रहती है क्योंकि वे उपहार नहीं हैं उपहार के प्राप्तकर्ता हैं। विकलांग और गैरविकलांग पुरुष पत्नी के रूप में 'सामान्य' स्त्री चाहते हैं और इस प्रकार वे भी विकलांगता की वजह से लोगों को कमतर आंकने वालों में शामिल हो जाते हैं।

एक ऐसे समाज में जहां कन्या भ्रूण हत्या अत्यंत व्यापक है, वहां अपूर्ण बच्चों के गर्भपात पर न कोई हलचल होगी न ही किसी को इससे कड़वाहट या घृणा होगी। अमनियोसेंटेसिस का लिंग निर्धारक जांच के रूप में उपयोग किये जाने के खिलाफ चलाये गए नारीवादी अभियान के सन्दर्भ में यह स्पष्ट हो जाता है। जबकि इस बात पर तो चर्चा चल रही है कि नारीवादियों के लिए जन्म पूर्व लिंग जांच के नैतिक विरोधाभास क्या हैं, विकलांगता की संभावना वाले बच्चों की पहचान और उनके गर्भपात के लिए जन्म पूर्व जांच का मुद्दा छूट गया है (मेनन, 2012)।

स्वयं विकलांग महिलाओं के लिए ये मुद्दे गौण हैं क्योंकि सांस्कृतिक रूढिबद्धता ने उन्हें मातृत्व की भूमिका से वंचित कर दिया है। जैसा कि मनोविश्लेषक सुधीर कक्कड़ ने स्पष्ट किया है, चाहे महिला का परिवार अमीर हो या गरीब, उसकी जाति, उसका वर्ग या धर्म चाहे कुछ भी हो, चाहे वह नई, युवा दुल्हन हो या कई बार गर्भवती होने और बच्चों को जन्म देने की वजह से बेहद थकी हुई हो एक भारतीय स्त्री जानती है कि मातृत्व उसे एक उद्देश्य और एक ऐसी पहचान देता है जो उसकी संस्कृति में किसी और तरीके से सभंव ही नही है। उसके द्वारा जन्म दिया गया प्रत्येक शिशु जिसे वो पाल–पोस कर सुरक्षापूर्वक बच्चे के रूप में बड़ा करती है, खासकर यदि बच्चा बेटा हो, तो एक महिला के रूप में योग्यता, भूमिका और हैसियत का प्रमाण भी है और स्त्री के रूप में उसके उद्धार का जरिया भी। हांलाकि विकलांग महिलाएं पूर्णता की इस संतुष्टि की सम्भावना से वंचित हैं क्योंकि विवाह और उसके बाद का मातृत्व दोनों सामाजिक रूप से प्रतिबंधक वातावरण में मुश्किल से मिलती हैं। (यहाँ इस बात का जिक्र किया जाना चाहिए कि भारतीय संस्कृति में एकल मातृत्व केवल अतिकुलीन महिलाओं का विशेषाधिकार रहा है। सामान्यतः बिना शादी के बच्चा होने को कलंकित किया जाता है।) विकलांग महिलाओं को जब महिलाओं की पारंपरिक भूमिका से वंचित कर दिया जाता है तो उनके लिए, मिशेल फाइन और एड्रिअन एस्च के शब्दों में, 'भूमिकाविहीनता' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जो सामाजिक अदृश्यता और स्त्रीत्व के निरस्तीकरण की अवस्था है। यह अवस्था उन्हें उस स्त्री पहचान को पाने की कोशिश करने के लिए बाध्य कर सकती है, भले ही कितनी भी निराशाजनक तरीके से, जिसे उनकी संस्कृति मूल्यवान समझती और वैध ठहराती है किन्तु उनकी विकलांगता उसे प्राप्त करने से वंचित कर देती है।

भारतीय नारीवादियों द्वारा किये गए विचारपूर्ण अध्ययनों ने मूल्यांकनपरक पुरुष दृष्टि के प्रभाव का विश्लेषण किया है। हांलाकि यौनिक वस्तु और 'घूरे जाने' की चीज के बीच के अंतर को नहीं समझा गया है। यदि पुरुष दृष्टि

से किसी भी सामान्य महिला को लगता है कि वह अक्रिय वस्तु है, यह घूरना किसी अपंग व्यक्ति को भद्दे दृश्य में तब्दील कर देता है। विकलांग महिला को न केवल इस पर लड़ना पड़ता है कि पुरुष महिलाओं को कैसे देखते हैं बल्कि कैसे पूरा का पूरा समाज विकलांगो को घूरता है, उनसे किसी भी प्रतिरोध की सम्भावना भी छीन कर। न तो भारतीय नारीवादी न ही विकलांगता आंदोलन यह स्वीकार करता है कि विकलांग महिला दोहरी मार झेल रही है, वह न केवल पुरुषों की प्रभुत्वकारी दृष्टि बर्दाश्त कर रही है बल्कि उसे उस संस्कृति की दृष्टि भी झेलनी पड़ रही है जिसने उसे घूरने की वस्तु बना दिया है। सिद्धान्त रूप में, कुछ विकलांग महिलाओं को किसी महिला समूह की गतिविधियों से फायदा हुआ होगा, पर ऐसे विशिष्ट उदाहरणों का कोई दस्तावेज उपलब्ध नही है। वहीँ दूसरी तरफ, इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं उपलब्ध हैं कि विकलांग महिलायें घरेलू हिंसा और लैंगिक अपवित्रीकरण का शिकार हैं।

भारतीय महिला अध्ययन संघ की संस्तुति है कि महिला अध्ययन के पाठ्यक्रमों में विकलांग महिलाओं के मुद्दे और चुनौतियों को जरूर शामिल किया जाये जिसमें इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि कैसे टकराव (परिवार और समाज दोनों स्तरों पर) उन व्यवस्थाओं/संरचनाओं की समझ को गहराई से प्रभावित करती है जिसमे विकलांगता परिचालित होती है और सन्निहित रहती है। इस सन्दर्भ में, व्यवस्थाओं/संरचनाओं और देखभाल की संप्रेषणात्मक पहुँच से जुड़े मुद्दे महिला समूहों के आतंरिक संवाद के केंद्र में होने चाहिए।

स्वास्थ्य आंदोलन को आकार देते नारीवादी

स्त्री स्वास्थ्य महिला आंदोलनों के मुख्य सरोकारों में से एक रहा है। किन्तु इन सरोकारों की गिनती स्वास्थ्य से जुड़े आंदोलन के रूप में नही की जाती, संभवतः इसलिये क्योंकि इन अभियानों में केन्द्रीय मुद्दा एक मनुष्य के रूप में महिला की प्रतिष्ठा है। कुछ आंदोलन ऐसे अवश्य रहे हैं जिसमे महिला समूहों की प्रतिभागिता रही या उनका नेतृत्व रहा जहाँ इन्हें स्वास्थ्य से जुड़े मुद्दे के रूप में पहचाना गया है। उदाहरण के लिए, महिला संगठनो द्वारा खतरनाक इंजेक्टेबल गर्भनिरोधकों के विरोध को लिया जा सकता है। स्त्री शक्ति संगठन और सहेली ने डेपो–प्रोवेरा नामक इंजेक्टेबल जन्म नियंत्रक विधि, जिसके कई दुष्प्रभाव और खतरे हैं, के विरुद्ध विरोध प्रदर्शन किये हैं। ये और अन्य समूह (फोरम फॉर विमेंस हेल्थ, मुम्बई) ने भी नेट–एन और नॉरप्लांट जैसे अन्य हानिकारक इंजेक्टेबल गर्भनिरोधकों के विरुद्ध अभियान चलाये हैं। मेडिको फ्रेंड सर्किल और ऑल इंडिया ड्रग एक्शन नेटवर्क (AIDAN) जैसे स्वास्थ्य समूहों ने इस अभियान का समर्थन किया। सहेली ने इस मुद्दे पर जनहित याचिका दायर की। इन सारे प्रयत्नों की वजह से सरकार ने परिवार नियोजन कार्यक्रम में इन इंजेक्टेबल गर्भनिरोधकों को शामिल नही करने का निर्णय लिया है, किन्तु इन्हें प्रतिबंधित करने से मना कर दिया है।

भारत में स्वास्थ्य पर कार्य कर रहे समूहों पर महिला आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा है, जिनमे से अधिकतर वित्तपोषित है और छोटे और विशेष क्षेत्रों में एकाग्रता के साथ केंद्रित होकर काम कर रहे हैं। इन समूहों ने महिलाओं के उन स्वास्थ्य मुद्दों पर काम किया है जिन्हें पहले नजरअंदाज कर दिया जाता था। उदाहरण के लिए, पारंपरिक स्वास्थ्य कार्य माता और शिशु के स्वास्थ्य तक ही सीमित थे जबकि पिछले 20 सालों में महिलाओं के प्रजननात्मक स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों को और बड़े पैमाने पर उठाया जाने लगा है। इस प्रकार हम पाते हैं कि भारत में स्वास्थ्य सक्रियतावाद पर महिला स्वास्थ्य का अत्यंत व्यापक और सुदीर्घ प्रभाव पड़ा है।

युद्धग्रस्त और संघर्षरत क्षेत्रों में नारीवादी

जिनक्षेत्रो में संघर्ष चल रहे है, जैसे, कश्मीर और उत्तर पूर्व, वहां लैंगिक हिंसा पर विशेष कानूनी व्यवस्थाओं का प्रभाव पड़ता है, जबकि सांप्रदायिक हिंसा में स्त्री देह को निशाना बनाया जाता है। संघर्ष रत क्षेत्रों में, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा विशेष और सामान्य, दोनों कानूनों में सन्निहित है, जैसे AFSPA, जो औपनिवेशिक विरासत का हिस्सा है (फिलिपॉस और बिश्नोई, 2013)। सशस्त्र सेना में किसी यूनिट के कमांडिंग अफसर को यह विशेषाधिकार है कि वह कथित अपराधी के खिलाफ किसी भी कानून का सहारा ले सकता है (बुटालिया, 2002)।

इसी बीच, 2013 में विभिन्न कानूनों में संशोधन के सम्बन्ध में महिला आन्दोलनों की उपलब्धियां महत्वपूर्ण रहीं। वर्दीवालों के संदर्भ में, जिन्हें जिन्हें दंड से पूरी मुक्ति थी, उन्हें बड़ी सफलता मिली। आपराधिक दंड संहिता

कहती है कि किसी भी लोकसेवारत व्यक्ति द्वारा किये गए लैंगिक हिंसा पर अभियोग चलाने के लिए मंजूरी की आवश्यकता नही है। मंजूरी के उपबंध को हटा दिया गया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 376(2) में सशस्त्र सेना कर्मी द्वारा हिरासत में किये गए बलात्कार को 'शक्ति बलात्कार' (power rape) कहा गया है। 1984 के सिख विरोधी दंगों में महिलाओं के विरुद्ध लैंगिक हिंसा हुई हालांकि इसको औपचारिक रूप से कभी नहीं स्वीकारा गया। 2002 में, गुजरात के नरोदा पाटिया मामले में लैंगिक हिंसा सांप्रदायिक हिंसा के केंद्र में थी और निचली अदालत ने भीड़ के प्रत्येक सदस्य को नामित/आरोपित किया। दिसंबर 2012 के बाद, यह स्वीकार किया गया कि सत्ता और पूर्वाग्रह एक दूसरे को प्रतिच्छेदित करते हैं और यह समझ भी बनी कि बल प्रयोग के सन्दर्भ में 'शक्ति' को पहचाने जाने की आवश्यकता है।

देह व्यापार में लिप्त कामगारों के साथ नारीवादी एकजुटता

नारीवादी विमर्श, जोकि वर्तमान राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विमर्शों में स्थित है, ने भारतीय सन्दर्भ में देह व्यापार में लिप्त लोगों, उनकी स्वायत्तता और उनके श्रम की प्रकृति की जांच परख की है। इनका दावा है कि लैंगिक श्रम के रूपों ने इस कार्य में लिप्त समुदायों से जुड़े सामाजिक लांछनों को फिर से गढ़ा है। देह व्यापार पर नारीवादी और दलित पक्षों को धार्मिक समूहों के पक्ष के साथ विश्लेषित किया गया ताकि न्याय से जुड़े सवालों की पड़ताल की जा सके, खासकर यह देखते हुए कि इन पक्षों ने श्रम के इस रूप के सामान्यीकरण के पक्ष में समीक्षाओं और तर्कों को जन्म दिया है। अतिवादी नारीवादी देह व्यापार को पूंजीवाद का उत्पाद मानते हैं जबकि नागर समाज इस तरह के श्रम में लिप्त महिलाओं को बिना अनुमति उपयोग और संरक्षण के तर्क से देखता है। एक तर्क यह है कि भारत में पारंपरिक देहव्यापार और जाति व्यवस्था के बीच अप्रत्यक्ष रिश्ता देखा गया है और दलित समुदायों के सन्दर्भ में इसे नैसर्गिकृत कर दिया गया है, चाहे वो देवदासियां हो, जोगिनें हों, मुरालियां हों, या फिर महाराष्ट्र की कलावन्तियाँ हों—उन सबको औपनिवेशिक कानूनी ढांचे में सामाजिक रूप से कलंकित पहचान वाली श्रेणी 'वेश्या' में डाल दिया गया, और आजीविका, जातीय शोषण और लैंगिकता के सवालों को दरकिनार कर दिया गया। विक्टोरिया युग की नैतिकता का अनुसरण करते हुए राष्ट्रीय और सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने समाज के इस वर्ग के लोगों को श्रमिक की श्रेणी में लाने के लिए औपनिवेशिक शक्तियों का समर्थन पाने की कोई कोशिश नही की, और न ही दलित और महिला आन्दोलनों का भारत में देहव्यापार के प्रति कोई समांगी प्रतिक्रिया रही है।

इस प्रकार, सरकारी कार्यक्रम सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं के लिए मौके और जगह उपलब्ध तो जरूर करवाते हैं जिससे वे जायज और सक्रिय रूप से भाग ले सकें, लेकिन इन प्रतिभागिताओं के प्रभाव का न तो सही पूर्वानुमान संभव है, न ही उन्हीं पूरी तरह नियंत्रित किया जा सकता है। फिर भी नारीवादी राजनीति को राज्य की नीतियों द्वारा जेंडर को पालतू बनाकर अपने साँचे में ढाल लेने और 'महिला' और 'महिला सशक्तीकरण' पर सरकारी नीतियों द्वारा दी गयी बनावटी स्पष्टता के प्रति बहुत शंकालु होना चाहिए। यह स्पष्टता मौजूदा पितृसत्तात्मक ढांचों एव संस्कृतियों के दृढ़ीकरण की कीमत पर आती है।

घरेलू कामगारों के साथ नारीवादी एकजुटता

हाल ही में करवाये गए असंगठित देह व्यापार में लिप्त महिलाकर्मियों के पहले अखिल भारतीय सर्वेक्षण में 71% महिलाओं ने कहा कि उन्होंने जान बूझ कर यह व्यवसाय चुना जब उन्होंने पाया कि अन्य प्रकार के रोजगार ज्यादा कठिन और बहुत कम पैसे देने वाले हैं। इनमे से अधिकतर पहले घरेलू कामगार थे। दूसरे शब्दों में, अध्ययन में शामिल अधिकतर महिलाओं ने पाया कि देहव्यापार की तुलना में घरेलू कामगार का काम ज्यादा अप्रतिष्ठित, निम्नस्तरीय, थकाने वाला और कम पैसे देने वाला है (साहनी और शंकर, 2011)। घरेलू कामगारों (नौकरों) की संख्या के बारे में एक अनुमान इस तथ्य के आधार पर लगाया जाता है कि देश में सफेदपोश मध्यवर्गीय लोगों की संख्या लगभग 3 करोड़ है। यदि हम ये मान लें कि उनमे से अधिकतर के पास एक कामवाली बाई होगी तो घरेलू कामगारों की संख्या डेढ़ करोड़ से ज्यादा होने की सम्भावना है (मेनन, 2012)। नारीवादियों ने घरेलू कामगारों के अधिकारो की रक्षा के लिए उनके साथ एकजुटता प्रदर्शित की है तथा उन्हें इकठ्ठा करने और उनका संघ बनाने में उन्हें उल्लेखनीय सफलता मिली है।

लैंगिक हिंसा की शिकार महिलाओं और विपरीतलिंगियों के साथ एकजुटता

महिलाओं के जीवन में बलात्कार, लैंगिक हिंसा और इसकी अन्य अभिव्यक्तियों से जुड़े घटनाओं की क्रूरता के मद्देनजर हमारे लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम लैंगिकता और लैंगिक हिंसा के निहितार्थ को गहराई से समझे। इसका प्रभाव केवल महिलाओं पर ही नही विपरीतलिंगियों पर भी पड़ता है। तथापि लैंगिक हिंसा के मुद्दे महिलाओं को अलग और विशिष्ट तरीके से प्रभावित करते हैं। कानूनी विमर्श में बलात्कार पर नारीवादी दृष्टिकोण पर चर्चा आवश्यक है। साथ ही सहमति और बलप्रयोग के विचार पर चर्चा होनी चाहिए जिनके लैंगिक हिंसा से जुड़े मामलों के प्रमाण के सिलसिले में खास मायने होते हैं। कानूनी व्यवस्था कानून के बाहर के तर्कों, जैसे नैतिकता, पवित्रता और उचित लैंगिक आचरण, जिसमे 'सही' और 'गलत' स्त्री की अवधारणा भी शामिल है, के द्वारा महिलाओं के बलात्कार एवं लैंगिक हमले के अनुभव को धुंधला और अस्पष्ट कर देती है। न्याय व्यवस्था के रूपांतरण के साथ कानूनी विमर्श में लैंगिकता की समझ को और व्यापक करने की आवश्यकता है। एक ऐसी व्यापक सैद्धान्तिक समझ को शामिल करने की जरूरत है जिसमे महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों का परिप्रेक्ष्य भी शामिल हो, सामाजिक उत्तरदायित्व के मुद्दे पर ध्यान दिया जा सके तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक और लैंगिक मान्यताओं को भी चुनौती दी जा सके ताकि नारीवादी दृष्टिकोण के साथ पुरुषों और स्त्रियों के अनुभवों की रूढिबद्धता को रोका जा सके (शाह, मर्चेन्ट, महाजन और निवेदिता, 2014)।

नारीवाद और प्रतिच्छेदनत्व

महिलाओं की अधीनता में जाति, वर्ग, नस्ल और जेंडर की प्रतिच्छेदनत्व यह पुरजोर तरीके से बताता है कि जेंडर से जुड़े प्रश्नों के उत्तर केवल पितृसत्ता में नही, कई मोर्चों पर ढूँढने पड़ेंगे। जब महिलाएं व्यवस्था को ललकारने की हिम्मत करती हैं तो सफलता आनी ही हैं। भले ही यह सफलता दमन के पूर्ण अंत के रूप में ठोस और तत्काल अर्थों में प्राप्त न हो, प्रतिरोध की क्रिया मात्र ही सशक्त बनाती हैं जिससे महिलाओं को एक आवाज मिलती है। यह आवाज अन्य आवाजों से मिलकर इतनी मजबूत हो जाती है कि अत्याचारी व्यवस्थाओं की नींव को हिलाने के लिये काफी है। चाहे वो साहित्य के क्षेत्र में हो, कानून के क्षेत्र में हो फिर सामाजिक आन्दोलनों में, सामाजिक और राजनैतिक संकट संघर्ष और प्रतिरोध को बढ़ावा देते हैं। आलोचनावादी साहित्य में हुई बढ़त इस तथ्य का प्रमाण है। अनुभव के स्तर पर देखें तो यह 16 दिसंबर 2012 को 23 वर्षीय पैरामेडिकल की छात्रा के बलात्कार के बाद भारत के महानगरों एवं कस्बों में युवाओं के नेतृत्व में खड़े होने वाले जन आंदोलन के रूप में दिखाई पड़ता है। ऐसी प्रक्रियाएं उत्तर पूर्व में भी दिखती हैं जहां मणिपुर, नागालैंड और मिजोरम में अभागे नागरिकों पर सेनाकर्मियों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों की प्रतिकिया के रूप में होने वाले महिला आन्दोलनों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

पिछले कुछ सालों में सिखविरोधी दंगों ने यह दर्शाया है कि महिला आन्दोलनों को साम्प्रदायिकता के विरुद्ध होने वाले संघर्ष से जुड़ जाना चाहिए, वहीं शाहबानो मामले ने समान नागरिक संहिता के विषय पर होने वाली बहस पर पुनर्विचार के लिए मजबूर किया, खासकर तब जब सांप्रदायिक ताकतों ने नारे का अपहरण कर लिया था और जहां जेंडर न्याय सुनिश्चित करने वाले समाधानों को ढूँढने के, धार्मिक समुदायों के वर्तमान ढाँचे में भी, नए तरीकों की खोज की जरूरत थी (पटेल, 1995)। दिसंबर, 1992 और 2002 की घटनाओं और दक्षिण एशिया क्षेत्र में बदलते घटनाक्रम ने कुल मिला जुला कर यह जताया कि साम्प्रदायिकता और फासीवाद की आशंका वास्तविक थी। पाकिस्तान का बदलता घटनाक्रम, जहाँ मलाला यूसुफजई और अन्य युवा महिलाओं ने शिक्षा के लिए संघर्ष किया, उस नई ऊर्जा का प्रतीक बन गया जिसने महिला आंदोलनों और अन्य लोकतांत्रिक संघर्षों से उनके गठजोड़ को प्रभावित किया।

इस प्रकार 'स्त्री' एक प्राकृतिक और स्वप्रमाणित पहचान नही है जो कि नारीवादी राजनीति का स्वाभाविक विषय है। नारीवादी राजनीति को राजनैतिक व्यवहार द्वारा ही अस्तित्व में लाया जा सकता है। कोई पूर्ववर्ती 'स्त्रियाँ' नही हैं जो हिन्दू या मुसलमान, सवर्ण या दलित, गोरी या काली हो सकती हैं, बल्कि वे 'लोग' हैं जो कि एक 'दलित' के रूप में, एक 'मुसलमान' के रूप में और एक 'स्त्री' के रूप में अलग–अलग प्रकार की राजनैतिक चुनौतियों का जवाब दे सकती हैं। नारीवाद की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह 'लोगों' को कितना प्रेरित कर पाती है ताकि वे विभिन्न परिस्थितियों में एक नारीवादी के रूप में दृढ़तापूर्वक डटी रह सकें। कभी कभी

यह भी उतना ही महत्वपूर्ण होता है कि नारीवादी ये पहचाने कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में नस्ल या जाति ज्यादा महत्वपूर्ण निर्धारक हो जाते हैं न कि जेंडर। 2011 का 'स्लट वॉक' जिसका आयोजन आक्रामक युवा महिलाओं ने किया और दिल्ली मेट्रो में लैंगिक उत्पीड़न के खिलाफ 'फ्लैश वॉक', की सफलता इसी तथ्य को प्रमाणित करते हैं।

जन मान्यताओं का ध्रुवीकरण

भारत में बाल विवाह के विरुद्ध विधिनिर्माण सरकारी हस्तक्षेप के महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में उभरा है। राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (2000) और राष्ट्रीय सशक्तीकरण नीति (2001) यह जोर दे कर कहती है कि लड़कियों के विवाह की कानूनी सीमा 18 वर्ष होगी और बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 की यह संस्तुति है कि 16 वर्ष के पहले हुई शादियां अमान्य होंगी। राज्य और समुदाय के बीच इस मुद्दे पर टकराव होते रहे हैं, जैसे, उदाहरण के लिए, आँध्रप्रदेश में मुस्लिम स्वीय विधि बोर्ड और राज्य महिला आयोग के बीच इस मुद्दे पर हुए टकरावों के सन्दर्भ में एक शोधपत्र राज्य द्वारा किये गए वैधानिक हस्तेक्षेपों का मानचित्रण किया है। इस अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष हैंः अपने कानूनों को लागू करने की सरकारों की स्पष्ट अक्षमता, बालविवाह निषेध अधिकारियों का अपने उत्तरदायित्व के बारे में पता नही होना, लड़कियों के विवाह के उम्र को बढाने के लिए उपलब्ध समाजिक योजनाओं का लाभ उठाने में विविध प्रशासकीय बाधाओं से आनेवाली मुश्किलें और, सहमति के कानूनी उम्र से थोड़े कम उम्र वालों लोगों द्वारा भाग कर की जाने वाली शादियों को अपहरण के मामले में बदलना। परिवार और कुल–आधारित पितृसत्ताओं द्वारा इन कानूनों का रणनीतिक उपयोग। जहां एक और 'अतियौनिक युवा व्यस्कों' के यौन क्रियाकलापों के अपराधिकीकरण की रूढ़िवादी प्रवृत्ति पाई जाती है जो कि न्यायालय के फैसलों की भाषा में दिखाई पड़ती है, वहीं दूसरी ओर तमिलनाडु जैसे राज़्यों में मध्यवर्ती पिछड़ी जातियों द्वारा राजनैतिक गोलबंदी की पीड़ादायक प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी हुई है जो उन महिलाओं जिन्होंने अपनी मर्जी से विवाह किया है, खासकर वो जो दलित पुरुषों के साथ रहना चाहती हैं, को कानून का सहारा लेने से रोकना चाहते हैं। यह आवश्यक है कि कानून बनने की प्रक्रिया का आलोचनात्मक अध्ययन करके नारीवादी अध्ययनकर्ता इस बात की पड़ताल करे और इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करें कि बाल विवाह को सीमित/नियंत्रित करने की सरकारी नीतियों और महिलाओं के लैंगिक विकल्पों को नियंत्रित करने की जाति आधारित समाज के सामाजिक आवेगों, डरों और व्यग्रताओं में क्या सम्बन्ध है।

चाहे वो परिवार हो, कुटुंब/समुदाय, बाजार, बाजार, सरकारी तंत्र–प्रत्येक क्षेत्र में गहरे घुसी हुई पितृसत्ताओं की प्रधानता की वजह से यह आवश्यक हो जाता था कि राज्य और राज्य की नीतियों के साथ जुड़ा जाए। एक वर्ग के रूप में महिलाये कई वास्तविकताओं द्वारा परिचालित होती हैं और मुख्य कर्ता कई मुद्दों पर बंटे हुए हैं, जिनमे शामिल है यौनकर्मी बनाम वेश्या महिला जैसे विभाजन।

नारीवादी समूह एवं सोशल मीडिया

नारीवादी समूहों ने सोशल मीडिया का बेहतरीन इस्तेमाल किया है। उन्होंने याहू और गूगल ग्रुप्स बनाये है, त्वरित सम्प्रेषण और तालमेल पूर्ण कार्यवाही के लिए साइबर फोरम, ब्लॉग्स और मिलते जुलते माध्यम बनाये हैं, बौद्धिक सामग्री एवं संसाधनों को साझा किया है और महिलाओं के मुद्दों से जुड़े छायाचित्रों, रिपोर्टों, पोस्टरों, डायरियों, गीतों, वृत्तचित्रों के आर्काइव्ज तैयार किये है जो ऑनलाइन उपलब्ध है। Feministsindia/yahoogroups-com, www-prajnyaarchives-org, www-sparrow-com, www-avaarchives-com, www-cwds-com नारीवादी समूहों ने कला, परिहास और संगीत का, ऑफलाइन और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, दोनों पर, प्रतिरोध के रूप में प्रभावी इस्तेमाल किया है जिसने युवाओं और बुजुर्गों को समान रूप से प्रभावित किया है।

साइबर स्पेस महिलाओं के लिये एक नई चिंता का विषय है क्योंकि फेसबुक और अन्य नेटवर्किंग साइट्स जेंडर आधारित हिंसा के नए ठिकाने बन गए हैं। शैक्षणिक संस्थानों में महिला विद्यार्थियों के यौन उत्पीड़न जैसी शिकायतें बढ़ती जा रही है। और सबसे चौंकाने वाली बात यह है कि सोशल मीडिया पर शिकायत करने वालों को कलंकित किया जा रहा है और उनके समुदाय को शर्मिंदा करने की कोशिशें की जा रही हैं। उनको निशाना बनाया जा रहा है, उन्हें गालियां दी जा रही हैं और उन पर शिक्षण संस्थाओं की 'छवि' खराब करने का आरोप लगाया जा रहा है।

सोशल मीडिया पर कई ऐसे पहल आरम्भ हो गए हैं जो भारतीय समाज में व्याप्त और गहरी जड़ें जमा चुके लैंगिकवाद की कलई खोलने के लिए भारतीय महिलाओं से जुडी रूढिबद्ध धारणाओं को चुनौती देते हैं। कई दमदार छवियों के द्वारा यह महिलाओं के लिए 'उपयुक्त' भूमिकाओं का मजाक उड़ाती हैं। प्रत्येक मीम (meme) एक ऐसे कथन से आरम्भ होता है जो पारंपरिक विचारों के अनुसार होता है और फिर उसे एक शानदार तरीके से एक संदेशपरक मोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिए– 'मुझे रसोई घर में जाना ही चाहिए ..... यह घर का इकलौता हिस्सा है जहाँ मैंने अभी तक बिजली की फिटिंग नही की है (कोहेन, 2016)।' कई वायरल हो चुके वीडियो के उदाहरण हैं जिसमें युवतियों ने देश में लैंगिक हिंसा और पाखंड पर करारा प्रहार किया है जिसमें बलात्कार, कपड़े, शिशु हत्या, विवाह, रात में महिलाओं का अकेले टहलना जैसे मुद्दे शामिल हैं।

सोशल मीडिया के विस्तार के इस युग ने जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति और संवाद के स्पेस को बढ़ाया है, वहीं दूसरी ओर, इसका स्वरुप और इसकी संस्कृति ऐसी है जो 'पक्ष' और 'विपक्ष' के जोड़े में पनपती और फलती–फूलती है, जिसमे बीच की संभावित स्थितियों के लिए कोई जगह नही है। इसमें तयशुदा मोर्चे हैं, त्वरित प्रतिक्रियाएं हैं, पेशेवर लड़ाकों वाली बात–चीत है। महिला अधिकारों के लिए काम करने वाले लोगों का सोशल मीडिया और टेलीविजन के स्पेस से जुड़ाव न केवल उनके सम्प्रेषण और संवाद को प्रभावित किया है जहाँ वो आदरपूर्वक जुड़ने में विफल हो रहे हैं, बल्कि इसमें बारीकियों, संवाद और स्वतुल्यता (जिसमें व्यक्ति अपनी अनुभूतियों और प्रतिक्रियाओं को जाँचता है और विचारों तथा क्रियाओं पर इनके असर के प्रति सचेत रहता है) के लिए कोई जगह नही है (नकवी फराह, PLD, 2015)

एल.जी.बी.टी. (समलिंगी, उभयलिंगी एवं विपरीतलिंगी) समूहों के साथ नारीवादी समूहों का गठजोड़

20वीं सदी के आखिरी दशक में भारत में लैंगिकता, जो अब तक निजी दायरे में थी, राजनैतिक दावों के विविध रूपों के आधार और केंद्र बिन्दु के रूप में उभरी। भारत में उन लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है जो एक अलग यौनिक प्राणी के रूप में अपने अधिकारों का दावा कर रहे हैं। वो अपने लैंगिक रुझान, जेंडर पहचान और यौनिक व्यवहारों की वजह से स्वयं को अलग समझते हैं। उन नई राजनैतिक सरोकारों से जुड़ने के लिये सक्रियतावादी राजनीति की और अधिक स्थापित परिभाषाएं गढ़ी जा रही हैं, जो उनके द्वारा अभिव्यक्त की जा रही हैं जो अपने आप को 'क्वीयर' शीर्षक के अंतर्गत गे (पुरुष समलिंगी), लेस्बियन (स्त्री समलिंगी), हिजड़ा, ट्रांसजेंडर (विपरीतलिंगी), कोठी (वह स्त्रैण लड़का या पुरुष जो समलिंगी रिश्ते में स्त्री की भूमिका निभाता है), और अन्य असंख्य पहचानों वाला मानते हैं (नारायण, 2004)।

इन विभिन्न समूहों के संघर्षों में कोई स्वाभाविक एकजुटता नही है (बल्कि इनके बीच गंभीर मतभेद हैं, खासकर वर्ग और जेंडर के आधार पर, जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए) किन्तु क्वीयर राजनीति के प्रोजेक्ट को, जो कि अपने आरंभिक अवस्था में है, विविध समुदायों और व्यवहारों को एक समुदाय में बदलने का भरसक प्रयास करता है। इन सारे पहचानों में एक समानता तो यह है कि इनके जड़ें लैंगिकता से जुड़ी हैं। इसके अलावा ये विषमलिंगी मानदंड, जो यह दावा करता है कि दो मनुष्य विषमलिंगी तौर पर ही रूमानी, यौनिक और भावनात्मक रूप से जुड़ सकते हैं, पर सवाल उठाने में एक समान हैं। 'क्वीयर' शब्द का इस्तेमाल जिस अर्थ में डेविड हालपेरिन ने किया है वह सकारात्मकता को नही बल्कि एक ऐसी स्थिति को दर्शाती है जो मानकीय व्यवहार के ठीक सामने है।

जन विमर्श में नारीवादी योगदान के रूप में 'जेंडर' शब्द के उपयोग की शुरुआत 1970 के दशक में हुई। हम पाते हैं कि 1990 के दशक से 'लिंग' की जैविक श्रेणी को ध्वस्त करके जेंडर ने दो अलग–अलग रूप ले लिए। एक विश्लेषणात्मक श्रेणी के रूप में जेंडर का उपयोग नारीवादी राजनीति के विषय के रूप में 'स्त्री' की अवधारणा को चुनौती देने के लिए किया गया। यह चुनौती जाति और लैंगिकता की राजनीति से मिली है। दूसरी ओर, जेंडर को राज्य ने विकास के विमर्शों में भूमिका निभाने के लिए लामबंद किया है जिसका उल्टा असर हुआ यानि जेंडर 'स्त्री' का पर्याय बन गया। इस प्रकार, जहाँ पहली प्रवृत्ति नारीवादी राजनीति के विषय को समाप्त करने के लिए और दूसरी प्रवृत्ति इसको पालतू बनाने के लिए आशंकित करती है। जेंडर शक्ति संबंधों का जाल है जिसमें मनुष्य अवस्थित है और लगातार निर्मित किया जा रहा है। इसलिए यह एक समाजशास्त्रीय और राजनैतिक श्रेणी है,

एक तरल प्रक्रिया है, अतः इसे परिवर्तित किया जा सकता है। भारत में ऐसे अमानकीय अनुभवों की वास्तविकताए, जिनमें शामिल हैं जेंडर पहचानों, लैंगिक प्रथाओं, लैंगिक पहचानों, कामुक व्यवहार के स्वीकृत स्वरुपय विषमलिंगवाद की सन्निहित प्रकृति का विरोध करती हैं जो कि कानून, मेडिकल प्रैक्टिस, संस्कृति और समाज में व्याप्त है। ये वास्तविकताएं परंपरागत रूप से रही हैं और अभी समकालीन परिस्थितियों में भी मौजूद हैं।

विषमलिंगवाद का प्रतिरोध जोगटा और शिवशक्ति जैसी पहचानों और प्रथाओं की प्रचुरता द्वारा हो रही है। (जोगटा और शिवशक्ति, दोनों जेंडर संबंधी अवज्ञा के परंपरागत संस्कृति–स्वीकृत स्वरुप हैं, खासकर पुरुषों द्वारा जहाँ वे स्त्री की जेंडर पहचान ग्रहण करते हैं।) ऐसे पहचानो की संख्या अनगिनत है। समुदायों के ढांचे के बाहर कई व्यक्तियों की कहानियाँ हैं जो एक अलग तरह की जिंदगी जीने के अपने अधिकार का दावा करते हैं। सबसे ज्यादा प्रचारित उदाहरण हैं, 1988 में मध्य प्रदेश पुलिस में सेवारत दो ग्रामीण पृष्ठभूमि की महिलाओं उर्मिला श्रीवास्तव एवं लीला नामदेव का आपस में विवाह। यह निश्चित रूप से प्रतिरोध का पहला उदाहरण नही था, क्योंकि कम से कम दस ऐसे मामलों के प्रमाण मिलते हैं जहाँ महिलाएं न केवल साथ रह रही हैं बल्कि अपने रिश्ते की सामाजिक स्वीकृति भी चाहती हैं, इसलिए एक दूसरे से विवाह करने का भी प्रयत्न करती हैं। सबसे दिलचस्प बात यह है कि ये महिलाएं हमेशा छोटे शहरों की होती हैं और उन्हें पश्चिमी सभ्यता या क्वीयर अधिकारों के विमर्श से उनका परिचय नहीं के बराबर था। इस प्रकार, बिना किसी समर्थक समुदाय या समूह के इन महिलाओं ने व्यक्तिगत तौर पर विषमलिंगी मानदंड वाले सामाजिक व्यवस्था का विरोध किया है।

1980 के दशक के उत्तरार्ध से एड्स महामारी के प्रति बढ़ती जागरूकता ने यह जरूरी और जायज कर दिया कि यौनक्रिया के बारे में कानून, जनसांख्यिकी और चिकित्सा के दायरे से बाहर बात की जाये। एच आई वी/एड्स की रोकथाम के लिए अन्तर्राष्ट्रीय फंडिंग ने यौनिकता पर काम करने वाले गैर सरकारी संगठनो की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इन अंतर्राष्ट्रीय फंडिंग एजेंसियों ने पुरानी गैर सरकारी संगठनों के यौनिकता से जुड़े कार्यक्रमों के लिए भी धन उपलब्ध करवाया। एक अन्य कारक जिसने जनमानस–कुलीन और साधारण, दोनों वर्गों में–यौनिकता को और जाहिर कर दिया, वह था 1990 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए संरचनात्मक समायोजन के फलस्वरूप अब तक नियंत्रित मीडिया का खुल जाना।

1980 दशक में महिला आंदोलनों के स्थापित नेतृत्व की शुरुआती प्रतिक्रिया होमोफोबिक (समलैंगिकों के प्रति अकारण भय/घृणा/नापसंदगी) थी और उन्होंने समलैंगिकता को अप्राकृतिक, एक पश्चिमी भटकाव और कुलीनवर्गीय चिंता मानते हुए उसकी निंदा की। 1991 के स्वायत्त महिला आंदोलनों के तिरुपति में हुए राष्ट्रीय सम्मलेन में एक ऐतिहासिक घटना हुई जिसमें समलैंगिकता पर एक खुली, कटुतापूर्ण चर्चा हुई। सबसे कड़ा विरोध वामपंथी समूहों ने किया जिन्होंने समलैंगिकता को वास्तविक राजनैतिक मुद्दों से कुलीनों के भटकाव के रूप में देखा और इसकी निंदा की। तब से अब तक महिला आंदोलनों के भीतर गहन संवाद हुए हैं और इस विषय में समझ में बड़ा बदलाव दिखता है खासकर वामपंथी दलों में। महिला आन्दोलनों में खुले तौर पर होमोफोबिक तर्क (सार्वजनिक रूप से) नहीं के बराबर दिए जाते हैं किन्तु इस तरह के तर्क जरूर दिए जाते हैं कि महिला आंदोलनों के बड़े मुद्दों की तुलना में लैंगिकता उतना जरूरी नही है।

एल.जी..बी.टी. अधिकारों से जुड़ा विवाद

अनुच्छेद 377 के संबंध में 11 दिसंबर 2014 के सर्वोच्च न्यायालय के उस फैसले पर जिसने 2 जुलाई, 2009 दिल्ली उच्च न्यायालय के प्रगतिशील फैसले (शाह और मुरलीधर) को पलट दिया, महिला समूहों ने गहरा अफसोस और सदमा व्यक्त किया। इस फैसले ने एल.जी.बी.टी. के संघर्षों और उनके अभियान के समर्थकों को गहरा धक्का पहुँचाया। दिल्ली उच्च न्यायालय का फैसला डॉ अम्बेडकर के उस आग्रह पर आधारित था कि भारत के पदानुक्रम आधारित और गहन पूर्वाग्रहों से भरे समाज में संवैधानिक नैतिकता सभी नागरिकों के अधिकारों के मूलाधार हैं न कि जन–नैतिकता। 2009 में उच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में समलैंगिक यौन क्रिया को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया। 1861 में ब्रिटिश उपनिवेशवादी अधिकारियों ने भारतीय दंड संहिता में अनुच्छेद 377 जोड़ा था जिसने 'प्रकृति के नियमों के विरुद्ध' यौन गतिविधियों को गैर कानूनी बना दिया। 1861

के बाद पहली बार सहमति आधारित समलैंगिक यौन सम्बन्ध को कानूनी मान्यता मिली।

क्वीयर राजनीति की जड़ें एक अर्थ में, भारत के नारीवादी आंदोलन से जुड़ीं हैं क्योंकि क्वीयर राजनीति से जुड़े अधिकतर लोग नारीवादी आंदोलन से ही आये हैं। 2000 के दशक के शुरुआती सालों में आरम्भ हुए इस आंदोलन ने अपने आप को अल्पसंख्यक राजनीति के प्रकार के रूप में नही देखा, जिसके फलस्वरूप वे 'हमें' बनाम 'उनको' के द्वैत में नही फंसे। 'क्वीयर' एक समावेशी, सर्वग्राही पद है जिसमे वो सारे लोग शामिल हैं जो जेंडर और लैंगिकता के मानकों पर सवाल उठाने को तैयार हैं। क्वीयर शब्द का प्रयोग जानबूझ कर एल.जी.बी.टी. जैसे श्रेणियों से अपने को अलग करने के लिए किया गया है और क्वीयर राजनीति को प्रतिच्छेदनत्व की धारणा से समझा जाता है। लैंगिकता को समान अधिकारों और पहचान के प्रिज़्म से नही देखा जाता है। लैंगिकता की कोई एक अवधारणा नही है और लैंगिकता जाति, वर्ग, धर्म और लिंग की अवधारणाओं से मूलभूत रूप से जुड़ी हुई है। अतः राजनैतिक दृष्टि से, स्त्री समलैंगिकों द्वारा आत्महत्या को महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के मुद्दे के रूप में देखा जायेगा न कि एल.जी.बी.टी. आंदोलन के मुद्दे के रूप में। वास्तव में, क्वीयर होने का मतलब लैंगिक प्राथमिकता ही नही है, क्वीयर होने को इससे वृहत्तर अवधारणा के रूप में देखा जाता है।

एल.जी.बी.टी. के लिए समलैंगिक आत्माभिमान जुलूस (गे प्राइड परेड) (जिसे आत्माभिमान मार्च, आत्माभिमान कार्यक्रम और आत्माभिमान पर्व के रूप में भी जाना जाता है) एल. जी.बी.टी. संस्कृति और आत्माभिमान का उत्सव मनाने के लिए आयोजित किया जाने वाला कार्यक्रम है जिसकी शुरुआत 1969 में न्यूयॉर्क शहर में हुई थी। शुरुआती जुलूस गंभीर भी थे और मजेदार भी और इनसे बढ़ते हुए सक्रिय कार्यकर्ता आन्दोलनों को प्रेरणा मिलती रही। आने वाले वर्षों में इसे दोहराया गया और दुनिया के विभिन्न शहरों में ज्यादा से ज्यादा वार्षिक जुलूसों का आयोजन किया जाने लगा। कई जुलूसो में आज भी मूल राजनैतिक और सक्रियतावादी प्रकृति बची हुई है, खासकर उन स्थानों में जहाँ स्वीकृति कम है। यह विभिन्नता प्रायः क्षेत्र की राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। फिर भी, अधिक स्वीकृति वाले शहरों में ये जुलूस उत्सव का रूप ले लेते हैं या यूँ कहें कि मार्डी ग्रा (mardi gras) जैसा चरित्र ग्रहण कर लेते हैं जिसमें उत्सव की अवधारणा पर राजनैतिक मंच बनाये जाते हैं। भारत में यह 1999 में कलकत्ता,पश्चिम बंगाल में शुरू हुआ और वैश्विक एकजुटता प्रदर्शित करने के लिए दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई जैसे कई शहरों में इसका आयोजन किया जाता है।

तीसरे लहर के नारीवाद का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है लिंग–सकारात्मकता, जिसमें यौन जीवन के सकारात्मक पक्ष के रूप में यौनिकता का जश्न मनाया जाता है। इसमें यौन–क्रिया का अर्थ और यौन–क्रिया के सन्दर्भ में दमन और सशक्तीकरण के मायने की अवधारणा विस्तृत हुई है।

'व्यक्तिगत राजनैतिक है', काफी समय से महिला आन्दोलनों को आपस में जोड़ने वाला बिंदु रहा है और लैंगिकता से ज्यादा प्रयोग किये जाने योग्य किसी क्षेत्र में नही रहा। गर्भपात के अधिकारों से लेकर गर्भ निरोधको के उपयोग तक, महिला समूहों ने लैंगिकता और दैहिक पवित्रता को नियंत्रित करने के अधिकारों के लिए अभियान चलाये हैं। महिलाओं के लिए लैंगिकता की एकमात्र जायज अभिव्यक्ति विषमलिंगी विवाह के रूप में हुई है जो कि जाति और समुदाय की सख्त पाबंदियों में सीमित है। आनंद के लिए यौनक्रिया महिलाओं के लिए वर्जित रही है। उनसे उम्मीद की जाती रही है कि वे यौनक्रिया में खुद को 'समर्पित' करेगी ताकि उनके पति संतुष्ट हों और वे बच्चे, बल्कि बेहतर हो कि बेटा, पैदा कर सकें। निस्संदेह वेश्याएं/यौनकर्मी पैमाने के दूसरे सिरे पर हैं जहाँ उनके पूरे अस्तित्व को यौनिकता के चारोँ और रचा गया है। महिलाओं की यौनिकता पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण कानून और न्यायपालिका के पूर्वाग्रहों द्वारा बलवती की जाती रही हैं ताकि परिवार की इकाई को बनाये रखने के प्रयत्नों को सहारा दिया जा सके, भले ही परिवार कितना भी दमनकारी और हिंसक क्यों न हो। लैंगिकता को एक तरल धारणा के रूप में देखा जाता है, विविध आचरणों/व्यवहारों के ऐसे क्षेत्र के रूप में देखा जाता है है जो 'समलिंगी' और 'विषमलिंगी' के पक्के युग्मक श्रेणियों से परे है।

भारत में समलैंगिक और उभयलिंगी महिलाएं संगठित हो रही हैं और अपने संबंधो की दृश्यता और सामाजिक पहचान की मांग कर रही हैं और दमन और हिंसा के

खात्मे की मांग कर रही हैं। विडम्बना यह है कि कानून में वर्तमान पार्श्वीकरण को कुछ लोग लाभकारी भी बता रहे हैं क्योंकि स्त्री–स्त्री के बीच की यौनक्रिया को स्पष्ट रूप से अपराध की श्रेणी में नही रखा गया है। इसके बावजूद अनुच्छेद 377 का प्रयोग समलिंगी महिलाओं के उत्पीड़न के लिए और विषमलिंगी विवाह में जबरन धकेलने के लिए किया गया है। समलैंगिक महिलाओं द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं की बढ़ती संख्या सामाजिक मान्यता और समलैंगिक यौनिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर निकाले जाने की जरूरत का प्रमाण है (पेंटर, 2009)।

समलैंगिक और उभयलिंगी महिलाओं का संघर्ष, न केवल समाज की मुख्यधारा के साथ बल्कि महिला आंदोलन के भीतर भी कठिन रहा है। हाल में उनके मुद्दे पूरी तरह से एल.जी.बी.टी. समूहों द्वारा भारतीय महिला आंदोलन के एजेंडे में लाये गए और महिला समूहों और लोकतांत्रिक अधिकार समूहों पूर्वाग्रहों का सामना करने के लिए और जिन आधारवाक्यों को पहले पहले प्रदत्त मान लिया जाता था, उन्हें चुनौती देने के लिए मजबूर हुए हैं। गठबंधन बनाये जा रहे हैं और आपसी संवाद से एक सामूहिक समझ विकसित हुई है और संघर्ष आगे बढ़ा है।

यहां इसका जिक्र उचित होगा कि वैवाहिक बलात्कार को अपराध बनाने में सरकार भी उतनी ही अनिच्छुक है क्योंकि यह पति–पत्नी के बीच के 'पवित्र' रिश्ते में दखल देना होगा। यह माना जाता है कि पति को अपनी पत्नी के साथ यौनक्रिया का अधिकार है क्योंकि वे शादीशुदा हैं और इसके लिए स्वीकृति हमेशा के लिए मान ली गयी हैं। इस निंदनीय धारणा को बार–बार चुनौती दी गयी है, और वैवाहिक बलात्कार को बलात्कार कानूनों के दायरे में लाने की कोशिशें की गयी हैं। मगर उसी कानून को दो सहमत व्यस्कों, जो अपने पसंद की यौनक्रिया में लिप्त होते हैं, के निजता के अतिक्रमण का कोई पछतावा नही है। ऐसा कोई भी कानून जो परिवार और विवाह की संस्था के लिए खतरा लगे, उसे कठिन संघर्ष से गुजरना पड़ता है। अनुच्छेद 377 को निरस्त करने का निवेदन, जिससे नैतिकता, परिवार और विषमलिंगी विवाह की धारणाओं को चुनौती मिलती है, भी ऐसा ही एक संघर्ष है।

क्वीयर राजनीति इन समुदायों के मुद्दों को अल्पसंख्यकों का मुद्दा नही मानती बल्कि यह समाज में जेंडर और लैंगिकता की वृहत्तर समझ के बारे में बात करती है जो हमारे लैंगिक रुझानों की परवाह किये बिना हम सब को प्रभावित करता है। यह यौनिकता को राजनीति के रूप में देखती है जो आंतरिक रूप से अनिवार्यतः वर्ग, जेंडर, जाति, धर्म और इस प्रकार की अन्य धारणाओं की राजनीति से जुड़ी है। इस प्रकार यह अन्य आन्दोलनों को स्वीकार करती है और उनसे जुड़ने की मांग करती है (नारायण और भान, 2005ः 3–4)।

अनुच्छेद 377 के उन्मूलन के लिए चलाये जानेवाले अभियान के लिए गठित एक व्यापक गठबंधन, वॉयसेस अगेंस्ट 377 ने समलिंगी इच्छाओं को महिला–अधिकारों, बाल–अधिकारों, साम्प्रदायिकता–विरोधी और युद्ध–विरोधी राजनीति से जोड़ा। PRISM, 'जो कि सभी जेंडर और लैंगिक अभिव्यक्तियों एवं पहचानों वाले नारीवादियों का एक ऐसा फोरम है जो न तो वित्तपोषित है न ही पंजीकृत है,' लैंगिकता को निर्माण और नियंत्रण की अन्य धुरियों जैसे, जेंडर, जाति और धर्म से जोड़ना 'चाहता है और साथ ही साथ ये मांग करता है कि' जिन प्रगतिशील आन्दोलनों से वे जुड़े है वे 'पार्श्वीकृत लैंगिकताओं के मुद्दों को अपने जनादेश का मूलभूत हिस्सा बनाये' (शर्मा और नाथ, 2005:82–3)।

लैंगिकता का व्यापक वामपंथी राजनीति से यह बुनावट विरोधाभासी ढंग से लैंगिकता की क्वीयर राजनीति को सीमित भी करती है। यह स्पष्ट है कि नारीवाद की भाँति क्वीयर राजनीति के कई परस्परविरोधी पहलू हो सकते हैं।

एक अन्य कारक जिसके प्रति गुप्ता (2016) ने हमारा ध्यान खींचा है, वह है क्वीयर राजनीति में वर्ग का प्रभाव। वह अपने विश्लेषण के लिए वर्ग को पैसे तक पहुँच और अंग्रेजी बोलने की योग्यता के रूप में परिभाषित करते हैं। जो लोग खुद को हिजड़ा या कोठी कहते हैं (जो क्वीयर राजनीति की जन–गतिविधियों में बहुत ज्यादा दिखते हैं), उस वर्ग के नही हैं जिस वर्ग के शहरी कुलीन हैं जो अपने को पुरुष समलिंगी (गे), स्त्री समलैंगिक (लेस्बियन), ट्रांसजेंडर और क्वीयर बताते हैं। क्वीयर राजनीति और प्रति–विषमलिंगीमानकीय प्रवृत्तियों ने महिला और जेंडर की धारणा को जटिल कर दिया है। इसने इन प्रश्नों के उत्तर को भी जटिल दिया हैः नारीवादी राजनीति के पात्र कौन हैं? क्या समलिंगी पुरुष नारीवादी राजनीति का पात्र हो

सकता है? विपरीतलिंगियों, जिनमे पुरुष से स्त्री और स्त्री से पुरुष दोनों शामिल हैं, का क्या? इस चिंताजनक उदाहरण पर विचार करें: कई हिजड़े 'महिला' के रूप में पहचाने जाने के अधिकार का दावा करते हैं।

हिजड़े जिस तरह के दमन का अनुभव करते हैं उन्हें 'महिलाओं' के अनुभवों के स्तर तक नही घटाया जा सकता। इसलिए हिजड़ों द्वारा अपनाई गई रणनीति, कि उन्हें तीसरे जेंडर के रूप में पहचाना जाए, ज्यादा आशाजनक है। कुछ साल पहले लैंगिकता और मानव अधिकारों के लिए गैर सरकारी संगठनों के लंबे समय तक अपने पक्ष में जनमत तैयार करने के प्रयासों के परिणामस्वरूप एक ऐसा प्रावधान किया गया जिसके अनुसार भारतीय पासपोर्ट के फॉर्म में हिजड़े लिंग के कॉलम में पुरुष (M)/स्त्री(F) के बदले E लिख सकते हैं।

विभिन्न जेंडरों की पहचान और राजनैतिक संस्थाओं के रूप में विविध और बदलते हुए तरीकों के पहचान से लोकतंत्र में प्रतिनिधि संस्थाओं के बारे में विचार के नए तरीके तय करने में मदद मिल सकती है। हिजड़ों और महिलाओं के आंदोलन के बीच गठजोड़ की संभावनाएं ऐसे प्रश्नों का सामना करती हैं जिसके तुरंत समाधान की उम्मीद नही है। ऐसे ही कुछ प्रश्न उर्वशी बुटालिया दिल्ली निवासी हिजड़े मोना से अपनी दोस्ती की मार्मिक विवरण में उठातीं हैं। मोना का जन्म एक पुरुष के रूप में हुआ था। लेकिन जिस पल एक व्यक्ति के रूप में अपने बारे में वह सचेत हुई वह आश्वस्त थी कि उसका जन्म एक गलत शरीर में हो गया है। तो क्या हिजड़े महिला आंदोलन के हिस्से हैं? इस प्रश्न का कोई आसान उत्तर नही है, और हमें अपनी बातचीत, विचार – विमर्श और अपने तर्क–वितर्क जारी रखने होंगे।

अब जबकि अनुच्छेद 377 अपनी समाप्ति की और बढ़ रहा है, आंदोलन के भीतर के दरार और मतभेद स्पष्ट दिखने लगेंगे। वैसे बहुत सारे लोग हैं जो बिना डर के पुरुष और महिला समलैंगिक का जीवन जी कर संतुष्ट हैं जो किसी भी रूप में राजनैतिक नही होना चाहते, राजनैतिक रूप से जागरूक ऐसे भी क्वीयर हैं जो हिन्दू दक्षिणपंथी या पूंजीवाद समर्थक या आरक्षण के विरोधी हैं, और निस्संदेह एक ऐसी भी क्वीयर राजनीति है जो इन सबका विरोधी है। यह वो समय है जब क्वीयर राजनीति प्रौढ़ हुई है। अब उसका इस मर्मभेदी सत्य से सामना हुआ (जिसका सामना नारीवाद को हाल में हुआ) कि सभी लोग जो विषमलिंगी नही हैं क्वीयर नही है, जैसे सभी महिलाएं नारीवादी नही होती, न ही सारे क्वीयर लोग (न ही सारी राजनैतिक रूप से सक्रिय महिलाएं) वामपंथी या धर्मनिरपेक्ष हैं।

भारतीय नारीवादी समूहों का अंतरराष्ट्रीय विमर्शों और कर्ताओं से जुड़ाव

महिला अधिकारों के लिए सक्रिय कार्यकर्ता वैश्विक मुद्दों के साथ एकजुटता के लिए हुए संघर्षों से निकले। ये संघर्ष थेः युद्धविरोधी आन्दोलन, नस्ली भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष कामगारों और मजदूर संघों के आन्दोलन, अफ्रीकी, लातिन अमेरिकी और एशियाई देशों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष, और मूल निवासियों तथा अल्पसंख्यकों के पहचान के दावों से जुड़े आंदोलन। वे समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय विमर्शों से जुड़े थे, जिनमे शामिल थेः महिला मुक्ति में क्रांतिकारी आन्दोलन की भूमिका, महिला आंदोलन का राज्य के साथ सम्बन्ध, मुख्यधारा के राजनैतिक दलों से महिला संगठनों की स्वायत्तता की आवश्यकता के औचित्य, 'वैश्विक सोच और स्थानीय कार्य' के सन्दर्भ में नेटवर्किंग का महत्व। 1980 के दशक के मध्य से, भारतीय नारीवादियों ने नीति–समर्थन के लिए अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क DAWN (डेवलपमेंट अल्टरनेटिव्ज विथ वीमेन) में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। DAWN की दृष्टि को सेन और ब्राउन (1987) ने एक निश्चित रूप प्रदान किया।

'समान अधिकारों' की भाषा मुख्यतः पश्चिमी पूंजीवादी देशों से सीखी गयी है। वैश्विक स्तर पर नव उदारवादी अर्थव्यवस्था हावी है, किन्तु संघर्ष आगे बढ़ रहे हैं और उन्हें राजनैतिक जमीन भी मिल रही है। कई स्थानों पर आन्दोलनों के परे एकजुटताएं निर्मित की गयी हैं, ये स्थान हैं: वर्ल्ड सोशल फोरम के साथ जुड़ाव, एक साझी अर्थव्यवस्था में आजीविका सृजन के लिए चलाये जा रहे अभियान जिसे लैटिन अमेरिका में, बूएन विविर या लिविंग वेल आंदोलन कहा जाता है। ये सकारात्मक प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ रही हैं कि महिलाओं द्वारा विभिन्न क्षेत्रो और महादेशों में एकजुटता को मजबूती दी जा रही है और वे साझे संसाधनों पर हक जताने वाले आंदोलनों में नीति–निर्माता के रूप में ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभा रही हैं। संयुक्त राष्ट्र आमसभा द्वारा CEDAW को 1993 में

अंगीकृत कर लिया गया था, और भारत ने इस पर हस्ताक्षर कर दिया है। भारत के महिला समूह भेदभाव के मुद्दों को सतर्कतापूर्वक रिपोर्ट करती रही हैं और महिलाओं के मानवाधिकारों के उल्लंघन के मुद्दों को वैश्विक मंचों पर उठाती रही हैं।

शांति समझौतों के दौरान महिलाओं की केंद्रीय स्थिति बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के महिला, शांति एवं सुरक्षा पर प्रस्ताव 1325 के इस्तेमाल की संभावनाएं एवं चिंताएं पिछले कुछ वर्षों में उभरी हैं। भारत में इस प्रस्ताव को शांति का उपाय नही माना जाता है। समस्या इस वजह से भी है कि राज्य किसी भी क्षेत्र को संघर्षरत क्षेत्र नही मानता बल्कि उन्हें अशांत क्षेत्र कहता है।

फिर भी इन समस्याओं के बावजूद संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का प्रस्ताव (UNSCR) आज भी भारत समेत वैश्विक दक्षिण के अन्य देशों के हाथ में एक महत्वपूर्ण अस्त्र है ताकि वे शांति विमर्श में जेंडर संवेदनशीलता और शांति प्रक्रिया में निर्णय लेने के स्तरों में महिलाओं की और अधिक प्रतिभागिता के लिए जोर डाल सकें।

उमड़ते दस करोड़ (वन बिलियन राइजिंग), महिलाओं के विरुद्ध चलाया जाने वाला अभियान पूरी दुनिया में बढ़ता जा रहा है। वन बिलियन राइजिंग महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के खात्मे के लिए मानव इतिहास का विशालतम जन–कार्रवाई है। दुनिया में तीन में से एक महिला को अपने जीवन काल में पीटा जाता है या उसके साथ बलात्कार होता है। इस चौंकाने वाले आंकड़े पर प्रतिक्रिया में कार्यवाही के लिए आवाहन के रूप में वैलेंटाइन दिवस 14 फरवरी 2012 को आरम्भ हुआ। दुनिया की जनसंख्या 7 अरब है। इसका अर्थ यह हुआ कि ऐसी महिलाओं और लड़कियों की संख्या एक अरब से ज्यादा हो जाती है। 200 से ज्यादा देश इस वैश्विक आन्दोलन से जुड़े हैं और भारत के महिला समूहों ने देश के विभिन्न हिस्सों में इस आंदोलन के अंतर्गत आयोजित कार्यक्रमों में सक्रिय, उत्साही और अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई हैं और इस मुद्दे के विभिन्न पहलूओं को क्षेत्रीय और वैश्विक स्तरों पर उठाया है। 2016 में इस क्रांति के मुख्य विषय थे–पार्श्वीकृत और वंचित वर्गों की महिलाओं पर केन्द्रित रहते हुए उनके मुद्दों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्वरुप देना, एक नई कलात्मक ऊर्जा लाना, महिलाओं और लड़कियों के विरुद्ध हिंसा की समाप्ति के लिए व्यवस्थागत परिवर्तन के आवाहन के रूप में क्रांति को व्यापक करना, लोगों को अपने लिए ही नही बल्कि दूसरों के लिए भी खड़े होने के लिए प्रेरित करना। धार्मिक पहचान के उदय और उनके दृढ़ीकरण के साथ कल्याणकारी राज्य के 'संकुचन' से दलित महिलायें शोषण और भेदभाव के प्रति अतिसंवेदनशील हो गई जिसके परिणामस्वरूप उनका पार्श्वीकरण बढ़ गया है, वहीं साइबर जगत पारदेशीय सक्रियतावाद के संभावित ठिकाने के रूप में उभरा है (दलित वीमेन, 2016)। दूसरी ओर, दलित महिलाओं के समूह में नवीनीकृत ऊर्जा और सक्रियता मिलती है। उदाहरण के लिए, 1995 में स्थापित राष्ट्रीय दलित महिला संघ और 1996 में स्थापित अखिल भारतीय दलित महिला फोरम। वैश्विक स्तर पर यू एन वर्ल्ड कांफ्रेंस अगेंस्ट रेसिज़्म, जिसका आयोजन 2001 में दक्षिण अफ्रीका के डरबन में किया गया, ने दलित महिलाओं के उत्पीड़न और नस्लवाद की तुलना का अवसर दिया। लगभग इसी समय दिल्ली घोषणा (2006) हुई, जिसमें पारदेशीय दलित नारीवादी सक्रियतावाद ने उत्तरजीविता और मर्यादा का मुद्दा उठाया, हालांकि पहचान और संप्रभुता से जुड़े कई समस्यात्मक मुद्दे भी थे।

भारतीय महिला समूह उन अंतर्राष्ट्रीय विमर्शों से भी काफी हद तक जुड़े हैं जिनका वास्ता पुरुषों और पौरुष से है ताकि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा से निपटा जा सके। भारत में महिला अध्ययन का अकादमिक जगत भी अंतर्राष्ट्रीय जगत से जुड़ा है। यह जुड़ाव नारीवाद पर सैद्धांतिक कार्य करने में, विभिन्न पहलूओं पर प्रश्न उठाने के लिए सूक्ष्म–भेदयुक्त श्रेणियों का उपयोग करने में और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और कार्यक्रमों में अपने विचार साझा करने में दिखता है। किन्तु भारत के विभिन्न क्षेत्रों के सक्रिय कार्यकर्ता किस हद तक अंतर्राष्ट्रीय विमर्शों एवं कर्ताओं से जुड़े, यह शंका का विषय है।

महिला आंदोलन और विकास का एजेंडा

1970 और 1980 के दशक में महिलाओं के आंदोलन ने अर्थव्यवस्था में महिलाओं के पार्श्वीकरण को रेखांकित किया। महिला सक्रिय कार्यकर्ताओं के प्रयास रहेः महिला अधिकारों के लिए आंदोलन और प्रचार, मुखर महिलाओं के विरुद्ध बढ़ती हिंसा के खिलाफ लैंगिक लड़ाई, और सड़कों और कार्यस्थलों पर लैंगिक शोषण को विरोध करने

के लिए टीम का गठन। नारीवादियों ने महिलाओं के लिए सड़कों, बगीचों, क्लबों, और परिवहन सेवाओं जैसे सार्वजनिक स्थलों पर दिन–रात और हर समय समान हिस्से की मांग की है (फड़के, खान और रानाडे, 2011)। 1990 के दशक में पुरुषों की साझेदारी में महिला सशक्तीकरण के अपने एजेंडे के साथ महिला आंदोलन मुख्यधारा में अपनी जायज स्थान की मांग कर रही थी। यह समाज के सभी वर्गों में अपने सहयोगी ढूँढने में सफल रही थी (रामचंद्रन और कामेश्वरी, 2014)। अपने क्षैतिज और लंबवत नेटवर्किंग की वजह से आंदोलन ने विकास के एजेंडे को कार्यान्वित करने के लिए एक अनुकूल और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण बनाया जिसमें उसे सूचना तकनीक और सम्प्रेषण के माध्यमों के प्रभावी इस्तेमाल, आधुनिक प्रबंधकीय कार्यप्रणालियों और एक कार्यकुशल कानून व्यवस्था तंत्र से मदद मिली। पिछले वर्षों में विकास की जिन नीतियों का अनुसरण किया गया उनसे समाज के विभिन्न वर्गों के अधिकारों को सीधे प्रभावित किया और विविध स्थानों और क्षेत्रों में मौजूद असमानताओं को और बढ़ा दिया। जहाँ प्रचलित पदक्रमों के साथ जेंडर आधारित अनुभवों का प्रतिच्छेदनत्व नया नहीं है, भेदभाव और बहिष्करण के विविध रूपों के परस्पर–व्याप्ति और संगति से महिलाओं के विशिष्ट वर्गों की अतिसंवेदनशीलता बढ़ गयी है और मर्यादापूर्ण जीवन की उनके तलाश की चुनौतियाँ भी बढ़ गयी हैं।

उन उदाहरणों में जिसमें महिलाओं ने अपनी आजीविका को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाले तथाकथित विकास परियोजनाओं और निजी औद्योगिक निगमों के रोकने के लिए चलाये गए आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई हैं, ऐसा पाया गया है कि हर कदम पर–प्रारंभिक जुड़ाव के वक़्त, उनकी प्रतिभागिता के दौरान और फिर नेतृत्वकारी भूमिका निभाते हुए–उन्हें आंदोलन के भीतर से और परिवार, समाज तथा सरकार का विरोध झेलना पड़ा है। फिर भी धीरे धीरे किन्तु निश्चित रूप से उन्होंने नीति निर्धारक निकायों में अपनी जगह बनाई है। हांलाकि आंदोलन की समाप्ति के बाद दो संभावनाएं रहीं हैं–या तो वे साधारण महिलाओं के समूह से दूर नेतृत्व के किसी अन्य स्तर पर चली गयी हैं या फिर कम दिखने लगी हैं। पुरुषों ने अनमने ढंग से इन महिलाओं की भूमिका को स्वीकार किया, लेकिन संसाधनों पर मालिकाना हक के बारे में उनकी सोच पितृसत्तात्मक ही रही। इन आंदोलनों के वास्तविक परिणामों का आकलन इस बात पर किया जाना चाहिए कि वे जेंडर सरोकारों के प्रति कितने प्रतिबद्ध थे और इसके लाभों में महिलाओं को बराबर का हिस्सा मिला या नहीं।

महिलाओं ने महिला–लक्षित आर्थिक विकास कार्यक्रमों जैसे लघु ऋण, आजीविका और गरीबी उन्मूलन संबंधी कार्यक्रमों में बढ़ चढ़ कर बड़ी संख्या में हिस्सा लिया। राज्य की विकासवादी नीतियाँ और कार्यक्रमों ने जो अवसर दिए उनका उपयोग महिलायें और दमित जातियों के लोग कर रहे हैं पर चुनौती इस बात का दस्तावेजीकरण करना है कि वे ऐसा कैसे कर रहे हैं और उनके इस उपयोग की प्रक्रिया में किस तरह के नए संघर्ष और टकराव पैदा हो रहे हैं। यह मान लेना कि महिलाएं यदि बैठकों में शामिल होती हैं, लोन लेती हैं और आजीविका संबंधी क्रिया कलाप शुरू करती हैं तो इससे अपने आप सशक्तीकरण हो जायेगा, या फिर ये मानना कि ऐसे सभी पहलों को खारिज कर के उनसे बिल्कुल किनारा कर लेना चाहिए–दोनों दृष्टिकोणों में ऐसा एक मुद्दा छूट जाता है जिसकी गम्भीरता से पड़ताल होनी चाहिए, वह मुद्दा है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से महिलाओं की सामाजिक पहचान, उनकी आपसी एकजुटता और तनाव कैसे बनते–बिगड़ते हैं। इस प्रकार, महिला आंदोलनों के दृष्टिकोण आपस में जुड़े उन सभी संघर्षों और अभियानों को स्वरुप देते और प्रभावित करते हैं जो सामाजिक सुरक्षा के मुद्दों जैसे भोजन के अधिकार, न्यूनतम मजदूरी, सामाजिक सुरक्षा और पेंशन के अधिकार के लिए चलाये जा रहे हैं। श्रमिक और नारीवादी आंदोलन और विमर्श एक दूसरे को प्रतिच्छेदित करते रहे हैं और एक दूसरे के मांगों और अधिकारों को आकार देते रहे हैं। उदाहरण के लिए, मातृत्व संबंधी फायदों का प्रावधान श्रमिक आंदोलन के साथ नारीवादी आंदोलन की भी जीत है। इस पर और विचार करने की आवश्यकता थी कि किस शब्दावली का प्रयोग हो और संघर्षों को, भीतर और बाहर के लोगों के सामने कैसे निरूपित किया जाये, अधिकारो के या फिर सशक्तीकरण के ढांचे का उपयोग करके। असंगठित कामगारों के लिए राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही कल्याणकारी योजनाओं को इस तरह व्यापक बनाया गया है कि घरेलू कामगारों को भी इसका फायदा पहुंच सके।

सबसे कठिन चुनौतियाँ रही हैः निर्धन, दलित और आदिवासी महिलाओं को शैक्षिक अवसर उपलब्ध करवाना, कम कीमत

वाले घर उपलब्ध करवाना, पर्यावरणीय और व्यवसायगत सुरक्षा और मानव अधिकार से जुड़े सरोकार। राज्य, राजनैतिक दलों, और महिला समूहों के लाभार्थियों का भी यह कर्तव्य है कि वे लोकतान्त्रिक और बहुसांस्कृतिक वातावरण सुनिश्चित करें जिसमें महिला सक्रिय कार्यकर्ता विकासात्मक संसाधनों और धन के आवंटन के बारे में विवेकपूर्ण और जेंडर न्याय पर आधारित निर्णय ले सके जिससे स्कूलों, सामुदायिक केंद्रों, स्पोर्ट्स क्लब, पुस्तकालय एवं रीडिंग रूम, कम कीमत वाले अस्पतालों और गरीबों के लिए कम कीमत वाले घरों का निर्माण हो सके। निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों द्वारा जेंडर समानता के लिए जेंडर बजटिंग का एक औजार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस प्रकार महिला आंदोलन और महिला अधिकारों के लिए इसके संघर्ष के सन्देश को अब किसी वर्ग विशेष के अधिकारों के लिए आंदोलन के रूप में नहीं देखा जा सकता है। अतः एक नागरिक के रूप में अपने लोकतान्त्रिक अधिकारों के लिए महिलाओं का संघर्ष विविध बहुलतावादी परम्पराओं के लिए समानता और सम्मान के मुद्दों से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। इससे असंख्य संभावनाएं और चुनौतियाँ रेखांकित होती हैं।

हिन्दू दक्षिणपंथी और सवर्णों के आरक्षण विरोधी राजनीति में, पारिस्थितिकीय आन्दोलनों में, भूमि के लिए हो रहे संघर्षों के साथ और सशस्त्र माओवादी संघर्षों में महिलाओं की सक्रिय प्रतिभागिता रही है। इन सबका अध्ययन नारीवादी दृष्टिकोण से किया जा सकता है (और किया जाता रहा है)।

भारत के महिला आंदोलन

आज के भारत में 'महिला आंदोलन' किससे मिलकर बने हैं? 1980 के दशक में स्वपरिभाषित स्वायत्त महिला आंदोलन का उदय हुआ जो राजनैतिक दलों के पितृसत्तात्मक नियंत्रण से स्वतंत्र थी। उसी समय मुख्यधारा की महिला संगठनों, जिसमे स्वतंत्र संगठन और राजनैतिक दलों के महिला प्रकोष्ठ दोनों शामिल थे, ने महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, स्वीय विधि (पर्सनल लॉ), घटते लिंग अनुपात और चुनावी निकायों में आरक्षण जैसे मुद्दों पर महिलाओं को लामबंद किया। विभिन्न दलों की महिलाओं, नारीवादियों, एच.आई.वी./एड्स से जुड़े गैर सरकारी संगठनों गैर–वित्तपोषित नारीवादी व क्वीयर समूहों एवं व्यक्तियों, लोकतान्त्रिक अधिकार समूहों, नारीवादी महिला अध्ययन शोध संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयी कार्यक्रमों (हॉलाकि सारे महिला अध्ययन कार्यक्रम नारीवादी नही हैं), ने अलग–अलग और कभी–कभी एक साथ मिलजुल कर जितने प्रयत्न और हस्तक्षेप किये उनके कुल योग ने भारतीय जनमानस में एक विशिष्ट नारीवादी स्पेस का निर्माण किया। इस स्पेस की विशेषता यह रही कि यहाँ विभिन्न मुद्दों पर सहमतियां और मतभेद दोनों रहे। नारीवादी प्रयत्नों और उनकी प्रभावशीलता का स्तर एवं गहनता एक समान नही रही है, जैसे, 'राष्ट्रीय' स्तर के अंग्रेजी भाषी और दूसरी भाषा बोलने वाली जनता तथा भारत के अन्य क्षेत्रों के बीच। इनमें से प्रत्येक का अध्ययन उनकी विशिष्टताओं के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए।

नारीवादी आन्दोलनों की सफलता

व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के विरुद्ध प्रत्यक्ष और छुपी हुई हिंसा का विखंडन करके नारीवादी सक्रियतावाद ने महिलाओं के शोषण, दमन, पराधीनता और दुर्दशा की जड़ पर प्रहार किया, ताकि परिवार, नातेदारी, संगठित धर्म, मीडिया और राज्य में पुरुष वर्चस्व पर सवाल उठाये जा सके। इसके परिणाम स्वरुप पिछले 50 सालों की नारीवादी गतिविधियों ने 5 हजार सालों से चली आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था को सफलता पूर्वक चुनौती दी। नारीवादी आंदोलन की वजह से विवाह, तलाक, बच्चे/बच्चों के संरक्षण, भरण–पोषण, विरासत, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, मातृत्व लाभ और जेंडर बजटिंग से जुड़े पारिवारिक कानूनों से सम्बंधित कानूनी सुधार आधिकारिक एजेंडे का हिस्सा बन गए हैं. इसके लिए महिला अधिकार आंदोलन के अग्रदूतों और महिला अध्ययन के विशेषज्ञों ने मिलजुल कर काम किया है।

अभी सिद्धांत और व्यवहार में कोई तालमेल नहीं हैः महिला अध्ययन समूह और महिला मानवाधिकार कार्यकर्त्ता अक्सर एक दूसरे से अलग–थलग हो कर काम कर रहे हैं, जबकि 1970 के दशक में स्त्री आंदोलनों एवं स्त्री अध्ययन के बीच बेहतर संवाद था। नारीवादी आंदोलनों का सबसे विशिष्ट योगदान इस समझ का विकसित होना है कि हमारे पास एक नई दुनिया गढ़ने का विशेषाधिकार है, जिसके केंद्र में पार्श्वीकृत महिलाएं हैं चाहे वो दलित हों, आदिवासी हों या फिर मुसलमान हों।

नागरिकता का जेंडरीकरण यह अनिवार्य कर देता है कि हम इस तथ्य को चुनौती दें कि नागरिकता, जो कि कथित रूप से एक सार्वजनिक पहचान है, दरअसल निजी विषमलिंगी पितृसत्तात्मक परिवारों द्वारा उत्पन्न और प्रभावित की जाती हैं। इस प्रकार नारीवादी विचारधारा पितृसत्तात्मक परिवार को महिलाओं के समाज में दूसरे दर्जे की हैसियत का मूलाधार मानती है. इसीलिए यह नारीवादी नारा है कि 'निजी राजनैतिक है'। अर्थात जिसे 'निजी' माना जाता है (जैसे शयनकक्ष, रसोईघर), वह पूरी तरह सत्ता–सम्बन्धो में डूबा हुआ है जिसके गंभीर निहितार्थ है उसके लिए जिसे 'सार्वजनिक' (संपत्ति, वैतनिक कार्य, नागरिकता) कहा जाता है और इसलिए यह 'राजनैतिक' है (मेनन, 1999)।

भारत के नारीवादी आंदोलन में विभिन्न विचारधाराओं की महिलाएं का हमेशा सहअस्तित्व रहा है। निवेदिता मेनन के शब्दों में नारीवादी की तरह देखना 'स्थिर करने के लिए नहीं बल्कि अस्थिर करने के लिए है'। जितनी हमारी समझ बढ़ती है उतना ही हमारा दायरा बढ़ता है। युवा महिलाओं और प्रमुखतः पारम्परिक समाज, जिसमें अधिकांश जनसंख्या शामिल है, दोनों की ओर से नारीवादियों और नारीवाद के विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया मिल रही है जिसे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के राजनैतिक वातावरण से ऊर्जा मिलती है। इसका यह भी मतलब हुआ कि महिला सक्रियतावाद से मिलने वाली प्रमुख अंतर्दृष्टियां लैंगिक भूमिकाओं एवं परम्पराओं के तय अवधारणाओं को बदलने में सफल नहीं हो सकी हैं।

दरअसल, बाजारीकरण के साथ इनमे से कुछ अवधारणाएं फिर से जीवित हुई हैं–इसका एक अच्छा उदाहरण है करवा चौथ की नई गढ़ी गयी लोकप्रियता (इस दिन हिन्दू विवाहिताएं सूर्योदय से चंद्रोदय तक अपने पतियों की सलामती और लम्बी उम्र के लिए उपवास रखती हैं)।

और जैसा कि इस विवरण में रेखांकित किया जा चुका है, विभिन्न जातियों और वर्गों से अनगनित ऊर्जाएं उपलब्ध हैं जो नारीवादी क्षेत्र को रूपांतरित कर रही हैं, पितृसत्ता के साथ साथ नियामक नारीवाद का भी प्रतिरोध कर रही है। यदि कोई सामाजिक व्यवस्था को परस्परव्यापी संरचनाओं की श्रृंखला के रूप में देखे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन संरचनाओं को विभिन्न हस्तक्षेपों द्वारा ही संकलित किया जा सकता है। इनकी सीमायें छिद्रदार हैं, सामजिक व्यवस्था भंगुर है, और प्रत्येक संरचना किसी और संरचना के द्वारा, जो कि इसके बाहर अवस्थित है, लगातार अस्थिर की जा रही है. किसी भी अन्य संरचना की भाँति पितृसत्ता का भी एक बाहरी क्षेत्र होता है जिसकी वजह से विभिन्न प्रकार के विरोध संभव हो सके हैं जिसने इसे लगातार कमजोर किया है।

सन्दर्भ–सूची (Bibliography)

Agarwal, Bina (1996) *A Field of One's Own*: Gender and Land Rights in South Asia. New Delhi: Cambridge University Press.

Bhasin, Kamla (2002) *What is* Patriarchy? Delhi: Kali for Women.

Boserup, Ester (1970) *Women's Role in Economic Development*. New York: St. Martins Press.

Butalia, Urvashi (2002) *Speaking Peace: Women's Voices from Kashmir*. Delhi: Kali for Women.

Chakravarti, Uma (2003) *Gendering Caste: Through a Feminist Lens*. Kolkata: Stree.

Chaturvedi, Sumit (March 2015) *The (Slow) Rise of Women-Oriented Political Parties* http://www.indiaspend.com/cover-story/the-slow-rise-of-women-oriented-political-parties-33663

Cohen, Claire (March 2016) How 'Spoilt Modern Indian Women' are Busting Sexist Stereotypes on Facebook: http://www.telegraph.co.uk/women/life/how-spoilt-modern-indian-women-are-busting-sexist-stereotypes-on/

Dalit Women (2016) http://idsn.org/key-issues/dalit-women/ (accessed on 23-1-2016).

Desai, Neera (1977) *Women in Modern India.* Mumbai: Vora& Co.

Dietrich, Gabriele (1992) *Reflections on the Women's Movement in India: Religion, Ecology, Development.* New York: University Publishing NY Corp.

Elson, D., and R. Pearson (1997) *The Subordination of Women and the Internationalization of Factory Production* in Visvanathan, J., L. Duggan, L. Nisonoff, N. Wiegersma, eds., *The Women, Gender and Development Reader.* London: Zed Press.

Erevelles, Nirmala (2000) *Educating Unruly Bodies: Critical Pedagogy, Disability Studies, and the Politics of Schooling. USA: Educational Theory*, v.50, n.1, pp.25-47

Fine, Michelle, Adrienne Asch (1988, eds) *Women with Disabilities: Essays in Psychology, Culture and Politics*. USA: Temple University Press.

Gupta, Sanjeev Kumar (2016) World of Hijras, Source: https://www.youtube.com/watch?v=6MSepc1PP40

Halperin, David (1990). *One Hundred Years of Homosexuality: And Other Essays on Greek Love. New York*: Routledge.

Indian Association of Women Studies (IWAS) (2014, Feb 4-7). *Equality, Pluralism and the State: Perspectives from the Women's Movement - A Report*, XIV National Conference on Women's Studies at Guwahati.

Jaising, Indira (2005) *Men's Laws, Women's Lives*. Delhi: Kali for Women.

John, Mary (2006, ed) *Women's Studies in India, First Edition*. Delhi: Penguin Group.

John, Mary E., Kaur, Ravinder, Palriwala, Rajni, Raju, Saraswati, and Sagar, Alpana (2008 Eds) *Planning Families, Planning Gender.* New Delhi: Actionaid and International Development Research Centre.

Kakar, Sudhir (1978) *The Inner World.* Delhi: Oxford University Press.

Kasturi, Leela and Vina Mazumdar (1994, eds) *Women and Indian Nationalism*. New Delhi: Vikas.

Kumar, Radha (1997) *History of Doing*. New Delhi: Kali for Women.

Krishnaswamy, Revathi (1993) *Subversive Spirituality: Woman as Saint-poet in Medieval India*, Women's, Volume 16, Issue 2, March-April 1993, Pages 139-147

Narrain, Arvind (2004) *The Articulation of Rights around Sexuality and Health: Subaltern Queer Cultures in India in the Era of Hindutva, Health and Human Rights*, Vol. 7, No. 2, Sexuality, Human Rights, and Health, pp. 142-164

Menon, Ritu (2011) *Making a Difference: Memoirs from the Women's Movement in India*. Delhi: Women Unlimited.

Menon, Nivedita (1999) Edited, *Gender and Politics in India*. New Delhi: Oxford University Press

Nayak, Nalini (2005) S*ocial Security for the Unorganised Sector*. Mumbai: *Economic and Political Weekly*, Vol. 40, Issue No. 22-23, 28 May.

Painter, George (2009) *The Sensibilities of Our Forefathers - The History of Sodomy Laws in the United States*. Source: http://www.sodomylaws.org

Partners for Law in Development (April 28, 2015): The Critical Reflections Series comprises four volumes on the following themes, drawn from the Roundtable on Exploring the Continuum between Sexuality and Sexual Violence. Volume 1: *Marriage, Sexuality And The Law*, Volume 2: *Speech, Sexuality And The Law*, Volume 3: *Criminalization And Sexuality*, Volume 4: *Feminist Praxis And Dialogue*.

Patel, Vibhuti (1985) *Women's Liberation in India*. London: New Left Review, No. 153, August 1985, pp. 75-86.

Patel, Vibhuti (1988) *Sex Determination and Sex Preselection Tests: Abuse of Advanced Technologies*, in Rehana Ghadiali (ed), *Women and Society in India*. Bombay: Sage Publications pp.178-185.

Patel, Vibhuti (1995) *Shah Bano Controversy and the Challenges Faced by Women's Movement in India*, in Asghar Ali Engineer (ed), *Problems of Muslim Women in India*. India:Orient Longman, pp.140- 148.

Patel, Vibhuti (2002) *Women's Challenges of the New Millennium*, New Delhi: Gyan Publications

Patel, Vibhuti (2009, Ed.) *Discourse on Women and Empowerment*. Delhi: The women Press.

Patel, Vibhuti (2010) *Human rights Movements in India*. Delhi: Social Change, 40 (4), Sage Publications, .Pp. 459-477.

Phadke, Shilpa, Khan Sameera, Ranade, Shilpa (2011) *Why Loiter*? Delhi: Penguin India.

Philipose, Pamela and Bishnoi, Aditi (2013, Eds.) *Across the Crossfire: Women and Conflict in India*. Delhi: Women Unlimited.

Philipose, Pamela (April 27, 2014) *She, The people* Sunday Magazine, The Hindu: http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-features/tp-sundaymagazine/she-the-people/article5951840.ece

Ramchandran, Vimla and KameshwariJandhyala (2014 eds) *Catastrophies of Empowerment-The Story of Mahila Samakhya*. Delhi: Zubaan Books.

Rege, Sharmila (2006) *Writing Caste/Writing Gender Narrating Dalit Women's Testimonies*. Delhi: ZubaanBooks.

Report (2004) *Voices Against 377 Rights For All: Ending Discrimination Against Queer Desire Under Section 377*. https://docs.google.com/file/d/0BwDlipuQ0I6Zc0xXUzAyYkZqM2c/edit

Rustagi, Preet (2004) *Significance of Gender-related Development Indicators: An Analysis of Indian States*. Delhi: Indian Journal of Gender Studies, Vol. 11, No. 3.

Sen, Gita, Germain, Adrienne and Chen, Lincoln C. (1994, eds) *Population Policies Reconsidered: Health Empowerment and Rights. Boston*: Harward Centre for Population and Development Studies and International Women's Health Coalition, New York.

Sen, G. and K. Brown (1987). *Development, Crises and Alternative Visions*. New York: Monthly Review Press

Shah, Chayanika, Raj Merchant, Shalini Mahajan and SmritiNevatia (2014) *No Outlaws in the Gender Galaxy*. Delhi: Zubaan Books.

Shiva, Vandana (1988) *Staying Alive: Women, Ecology and Development*. London: Zed Books.

Stephen, Cynthia (2009) F*eminism and Dalit Women in India* http://www.countercurrents.org/stephen161109.htm (accessed on 31-12-2015)

UNFPA (2015). *How many girls are missing at birth in India? Trends in sex Ratio at Birth (2001-2012)*. UNFPA.

Velayudhan, Meera (2009) *Women's Land Rights in South Asia: Struggles and Diverse Contexts*. Mumbai: Economic and Political Weekly, 44(44):74-79January 2009.

लेखिकाओं के बारे में

डॉ विभूति पटेल एस एन डी टी विश्वविद्यालय, मुंबई के अर्थशास्त्र विभाग में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष हैं। उन्होंने अर्थशास्त्र में पी एच डी की और उन्हें महिला अध्ययन, विकास अर्धशास्त्र, श्रम अर्थशास्त्र, औद्योगिक अर्थशास्त्र और जेंडर अर्थशास्त्र विशेषज्ञता प्राप्त हैं। विभूति पटेल भारत के महिला आंदोलन में 1972 से सक्रिय हैं।

राधिका खजूरिया तम्बाकू–मुक्त बच्चे (टोबैको –फ्री किड्स) अभियान के साथ वरिष्ठ नीति सलाहकार हैं. पूर्व में वह वीमेन पावर कनेक्ट (WPC) में जेंडर न्याय समानता के निदेशिका रही हैं। उन्होंने यू. एन. वीमेन, यू. एन.डी. पी. के अलावा महाराष्ट्र, राजस्थान और गुजरात में स्थित कई गैर सरकारी संगठनों के साथ किया है।

इस प्रकाशन में व्यक्त विचार जरूरी रूप से फ्रेडरिक एबर्ट स्टिफटंग के नहीं है।

Imprint
© 2016 Friedrich-Ebert-Stiftung India Office
K - 70 B, Hauz Khas Enclave, New Delhi - 110016, India

Responsible:
Patrick Ruether | Deputy Resident Representative
Damyanty Sridharan | Senior Adviser

Phone: +91-11-26561361-64, 26564690
Fax: +91-11-26564691
Website: www.fes-india.org
Facebook: Friedrich-Ebert-Stiftung, India

To order publication:
info@fes-india.org

फ्रेडरिक इबर्ट स्टिफटंग (एफ. ई. एस.) के किसी भी प्रकाशन के व्यावसायिक उपयोग की अनुमति एफ. ई. एस. की लिखित सहमति के बिना नहीं है।

फ्रेडरिक इबर्ट स्टिफटंग (एफ. ई. एस.) जर्मनी का सबसे पुराना राजनैतिक फाउंडेशन है. इस फाउंडेशन का नामकरण फ्रेडरिक इबर्ट के नाम पर किया गया है जो जर्मनी के लोकतान्त्रिक रूप से चुने गए पहले राष्ट्रपति थे।

वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे एफ. ई. एस के **कार्यक्रमों और परियोजनाओं में एशिया** का क्षेत्रीय कार्यक्रम (Regional Programme in Asia) अपना योगदान देता है। इसकी गतिविधियों का फोकस है भूमंडलीकरण, श्रम की गतिशीलता, क्षेत्रीय एकीकरण और जीवन के समस्त क्षेत्रों में जुड़ाव जैसे रुझानों पर प्रतिक्रिया के द्वारा राष्ट्रीय स्तर के परे ले जाना। इसके अंतर्गत जो परियोजनाएं चलाई जाती हैं उनका उद्देश्य है पारदेशीय गठबंधनों और व्यक्तियों तथा संस्थाओं के बीच आपसी मेल का निर्माण ताकि क्षेत्र में सामाजिक न्याय, चिरस्थायी शान्ति, आर्थिक विकास के लिए परिवर्तन को प्रोत्साहित किया जा सके।

www.fes-asia.org

EFQM Committed to excellence

ISBN 978-969-9675-06-5